MNOHR DHARA G.K.V.

वैद्य धर्मदत्त
स्मृति संग्रह

कवि इन्द्र जेतली

की छटी धारा

मनोहर धारा

(कवि की पूर्व प्रकाशित पुस्तकें)

1) रसधारा मूल्य--३) रुपये

2) सूक्तिधारा और हृदयधारा एक पुस्तिका में--३) रुपये

3) करुणधारा और रञ्जनधारा एक पुस्तिका में--३) रुपये

प्रथम संस्करण	सन्	मूल्य
११०० प्रतियाँ	१९७४	६) रुपये

मिलने का पता :--
रोहिताश्व प्रकाशन
१३२७-२२-बी
चण्डीगढ़

प्रकाशक :--
रोहिताश्व प्रकाशन
१३२७-२२-बी
चण्डीगढ़

मुद्रक :--
सुरेशचन्द्र वैष्णव
मैनेजर : गुरुकुल
काँगड़ी प्रिंटिंग प्रेस
हरिद्वार ।

सम्मति

कविवर 'इन्द्र' की 'मनोहर-धारा' पढ़ने का अवसर प्राप्त हुआ । उक्त काव्य-संग्रह में विविध तरंगें हैं । कवि ने अपने भावावेश को सशक्त शब्दों में व्यक्त किया है, तथा काव्यगत सरसता उत्पन्न करने की भरसक चेष्टा की है । यह ठीक है कि कवि को पिंगल-शास्त्र का यथोचित अभ्यास नहीं था तथापि उसने यथाशक्ति इसका निर्वाह किया है और उसे सफलता प्राप्त हुई है । 'प्रेम-बन्धन' की निम्नांकित पंक्तियों से कवि के भावस्तर का अनुमान लगाया जा सकता है--

शक न इस में है ज़रा भी
प्यार उपजाता है प्यार ।
क्या कभी तुमने बजाया,
हृदय से है प्रेम-तार ? (पृ० ८५)

कवि की भाषा सरल एवं प्रवाह युक्त है ।

मैं कवि के प्रयास का स्वागत करता हूँ, तथा उसकी सफलता की कामना करता हूँ ।

अम्बिका प्रसाद वाजपेयी
एम०ए०,पी-एच०डी०,डी०लिट०
अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय,
हरिद्वार ।

डा० विष्णुदत्त राकेश
एम०ए०,पी-एच०डी०, डी०लिट्०
स्नातकोत्तर हिन्दी-विभाग
गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार (उ०प्र०)

दिनांक ११.१०..७४

श्री इन्द्रसेन जेतली ने जब भी अपनी कृतियाँ मुझे भेंट की मेरे मन पर उनके सौजन्य, स्नेह, श्रम तथा निरन्तर काव्याभ्यासी व्यक्तित्व का गहरा प्रभाव पड़ा। व्यक्त अनुभूति की प्रामाणिकता के लिए यदि रचनाकार स्वयं में प्रमाण है तो इन रचनाओं की वास्तविक अनुभूतियों पर सन्देह नहीं किया जा सकता।

रचनाकार की अभिव्यंजना-पद्धति ऋजु तथा सपाट है। कवि यदि जीवन के व्यापक विराट् सत्य के अवलोकन में प्रवृत्त हुआ तो निश्चय ही उसकी व्यक्तिवादी चेतना स्वर्ग का स्पर्श कर सकती है। "मनोहर धारा" की वैदिक तरंग कवि के संस्कारी व्यक्तित्व के साथ ज्ञानात्मक संवेदना का परिचय कराती है। अतः इस दिशा में अग्रसर होकर भविष्य में सभी प्रमुख वैदिक सूक्तों का भावानुवाद उन्हें करना चाहिए। हिन्दी में यही कार्य उन्हें स्थायी स्थान देगा।

शुभ कामनाओं के साथ।

विष्णुदत्त राकेश

✲ ✲ ✲

कवि इन्द्रसेन जेतली की अब तक कई रचनाएँ प्रकाशित **हो चुकी हैं जिनका रसास्वादन मैंने स्वयं अध्ययन करके एवं** उन्हीं की वाणी से सुनकर किया है। प्रस्तुत कृति आपकी छठी काव्य धारा है जिसे आपने 'मनोहर धारा' नाम दिया है।

इसके अध्ययन से मुझे गोस्वामी तुलसीदास की निम्न पंक्तियाँ अकस्मात् स्मरण हो आती हैं :—

कीन्हे प्राकृत जन गुन गाना। सिर धुनि गिरा लगत पछिताना।।

राम काव्य तुलसी से पूर्व प्राकृतादि कवियों द्वारा अत्यधिक

मात्रा में लिखा जा चुका था 'किन्तु जन भाषा–अर्थात् अवधी में उसी को उससे अधिक क्या सर्वोपरि स्थान देने का श्रेय गोस्वामी जी को ही है। ठीक उसी प्रकार मनोहर धारा में आये हुए भाव-अनुभावादि विभिन्न कवियों द्वारा विभिन्न भाषाओं में अभिव्यक्ति पाकर काव्य रूप में आ चुके हैं किन्तु अहिन्दी भाषी उसका रसास्वादन नहीं कर सकते, जिनके लिए कवीन्द्र जेतली का यह प्रयास एक सफल प्रयास है। कोई नयी बात नहीं कही है किन्तु पुरानी बात को बड़े ही सुन्दर ढंग से व्यक्त कर उसे पूर्ण मौलिकता एवं सारल्य देने का सफल प्रयास किया है। उदाहरणार्थ :—

"बतरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाय।
सौंह करे भौंहन हँसे, देन कहै नटि जाय।" बिहारी

"बातरस की लालचिन ने, बाँसुरी रख दी कहीं।
सौंह खाती, भौंह चढ़ाती, वापिसी करती नहीं॥" श्याम त०

जेतली जी पंजाबी हैं। यदि शुद्ध शब्दों में कहें तो हिन्दुस्तानी हैं। आपने विभिन्न भावों को जो क्लिष्ट एवं दुरूह थे सभी हिन्दुस्तानियों के लिए सुलभ एवं सुगम्य बना दिया।

आधुनिक युग क्षेत्रीय भाषाओं एवं बोलियों के विकास का युग है। इन के विकास के बिना साहित्यिक हिन्दी का पूर्ण विकसित होना असंभव नहीं तो संदिग्ध अवश्य है।

मनोहर धारा अनेक तरंगों में विभक्त है। इस में ईश, शृंगार, श्याम, नीति, विविध, विचार, ऋतु, वैदिक एवं वैराग्य तरंग तथा बची हुई सूक्तियाँ हैं। प्रायः सभी तरंगों एवं बची हुई सूक्तियों के विषय में उपर्युक्त कथन अक्षरशः सत्य है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि श्री जेतली जी की यह कृति जन-जन को भायेगी जो इनके महत्व का विषय बनेगी, एवं हिन्दुस्तानी के पूर्ण विकास की एक महत्वपूर्ण शृंखला होगी। सस्नेह

प्रेमाश्रम, **प्रो० रामाश्रय मिश्र** एम० ए०
हरिद्वार हिन्दी विभाग, गुरुकुल कांगड़ी वि० वि०
१५ अक्तूबर ७४ हरिद्वार

प्रकाशक का वक्तव्य

कवि जेतल जी का विश्वास है कि कवियों का जाति और देश के प्रति बड़ा भारी उत्तर दायित्व होता है। कोई भी मनुष्य जिसके पास धन है वह उसे चाहे जिस तरह उपयोग में ला सकता है। कोई पूछे कि धन किस लिये होता है ? तो क्या उत्तर होगा ?

हम कहेंगे अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये और अधिक हो तो उनकी आवश्यकताओं के लिये भी कि जिनके पास धन नहीं है पर जो योग्य हैं। जाति और देश के हित में लगाने के लिये। और कोई यह भी कहेगा कि फिजूल खर्ची के लिये, मौज उड़ाने के लिये, स्वान्तः सुखाय।

कवित्व शक्ति भी धन है। इसे परार्थ के लिये भी लगाया जा सकता है और स्वार्थ के लिये भी। स्वान्तः सुखाय यदि इसका उद्देश्य बनाया जाय तो यह नीचतम उपयोग होगा। कवित्व शक्ति का सर्वोत्तम उपयोग वह होना चाहिए कि जिससे अधिक से अधिक लाभ हो। जो संसार के हित के लिये हो, धर्म और जाति और देश के हित के लिये हो, फिर समाज और अन्ततोगत्वा व्यक्ति मात्र और सबके बाद स्वयं के लिये।

देश की भाषा बदल जाती है। वही साहित्य जो अपने देश की प्राचीन भाषा में होता है इस समय की नवीन भाषा में करना आवश्यक हो जाता है। जो सूक्तियाँ या विचार संस्कृत की पुस्तकों में या प्राकृत व अपभ्रंश भाषाओं की पुस्तकों में थे, ब्रज भाषा में लिखे जाने आवश्यक हुवे। आज वे सारे सुभाषित इस समय की सामयिक हिन्दी में लिखे जाने आवश्यक हो चुके हैं।

संस्कृत में सुभाषित विदुर नीति, चाणक्य नीति, भर्तृहरि के शतकों आदि में प्राप्त होते हैं। और कुछ सुभाषित गाथा शप्तशती, आर्या-शप्तशती आदि में प्राप्त होते हैं। अवधी और ब्रजभाषा में वही विचार और बहुत से नये भी बिहारी सतसई, कबीर की साखियों गिरधर की कुण्डलियों आदि में मिलते हैं। अब समय की मांग है कि इन्हें सर्वसाधारण की बोलचाल की भाषा में प्रस्तुत किया जाय। यद्यपि विचार तो पुराने और कई नये भी होते हैं पर इन्हे नई भाषा में लिखने से यह नहीं कहा जा सकता कि ये अनूदित हैं। विहारी सतसई को कोई पागल ही कहेगा कि यह सतसई पुरानी सूक्तियों का अनुवाद है।

इस समय हिन्दी साहित्य की माँग है कि हम अपने साहित्य के आदि स्रोत संस्कृत के साहित्य तक ही न सीमित रहकर अंग्रेजी, फ्रैंच तथा भारत की अन्य भाषाओं के स्रोतों से भी सुभाषितों तथा अन्य साहित्यिक विचारों को लेकर हिन्दी को सर्व-गुण सम्पन्न करें। पर दुख का विषय तो ये है कि अभी तक हम संस्कृत स्रोत पर ही आश्रित हैं और इस आश्रय से आगे नहीं बढ़ सके हैं। हमारे सारे महाकाव्य साकेत, प्रिय प्रवास, उर्वशी, कामायनी आदि इन्हीं स्रोतों से ही आये हैं। हम अंग्रेज़ी के स्रोतों से या पन्जाबी आदि के स्रोतों से किसी महाकाव्य की रचना अभी तक नहीं कर सके।

हमारे हिन्दी के कर्णधार जो कि हिन्दी को किस दिशा में प्रगति करनी चाहिये, निर्धारित करने के उत्तरदायी हैं—मैं क्या कहूँ— या तो महामूर्ख हैं या ये कहूँ कि हिन्दी के शत्रु हैं? यों तो मूर्ख मित्र भी शत्रु से बुरा होता है, पर इन्होंने तो हद ही मुका दी है।

इतिहास इन्हें क्षमा नहीं करेगा। इनकी शत्रुता के सम्बन्ध में मैं जेतली जी की हिन्दी तरंग वाली पुस्तक में लिखूंगा।

यहाँ पर एक छोटी सी बात का उल्लेख कर देना आवश्यक प्रतीत होता है। पञ्जाब में अंग्रेजों का राज्य आने से पूर्व सिक्खों का राज्य था। इस समय तो सिक्खों ने पंजाबी का नाद गुंजाया हुआ है। और जी जान से पंजाबी की उन्नति की ओर लगे हुए हैं। क्या ही अच्छा होता कि यह भावना और लगन उनके मनों में उस समय भी जागृत होती कि जब पंजाब में उनका अपना राज था। अगर ऐसा होता तो आज हिन्दुस्तान का इतिहास कुछ और ही होता। महाराजा रञ्जीतसिंह के समय सरकारी भाषा फारसी थी। सरकार के सब काम फारसी में होते थे। और इसलिए जो भी पढ़े लिखे थे अर्थात् जो भी राजकाज के कर्मचारी थे सब फारसी को पढ़ते थे। हाँ मुल्ला अरबी और पण्डित संस्कृत भी। तथा वणिक् जगत् अपना काम लण्डे और टाकरी में चलाता था। गुरुद्वारों के ग्रन्थी श्री गुरुग्रन्थ साहब की लिपि गुरुमुखी को पढ़ते थे। वह जनता भी जिन्होंने गुरुग्रन्थ साहिब को पढ़ना होता था थोड़ी बहुत गुरुमुखी पढ़ लेती थी। धर्म भावना को पूरा करने के लिए ग्रन्थसाहब के पाठ घरों में ग्रन्थियों से करवा लिये जाते थे।

अगर उस समय सारे पंजाब की भाषा पंजाबी को और लिपि गुरुमुखी को कर दिया जाता तो क्या ही अच्छा होता। अगर सरकारी काम फारसी में न होकर गुरुमुखी और पंजाबी में होने लगते तो फिर सर्वसाधारण स्वयं गुरुमुखी और पंजाबी पढ़ने लगते। अंग्रेजों ने भी तो अपने शासन काल में अंग्रेज़ी चलाई थी।

पर उस समय ऐसा नहीं हुआ ।

राज्य की बागडोर जब अंग्रेजों के हाथ में आई तो उन्होंने सोचा कि पंजाब की सरकारी भाषा क्या होवे? उस समय वे दिल्ली और उत्तर प्रदेश की ओर से पंजाब में गये थे । उन्होंने देखा वहाँ सब राज कर्मचारी पर्शियन लिपि को जानते हैं इसलिए लिपि तो पर्शियन ही होनी चाहिए । और पर्शियन लिपि में दिल्ली और उत्तर प्रदेश के निकटवर्ती प्रदेशों में उर्दू लिखी जाती थी जो सर्वसाधारण की भाषा थी । उन्होंने बहुत से राज कर्मचारी जिन पर उन्हें विश्वास था इधर से ही ले जाते थे । सो पंजाब की 'सरकारी भाषा' और इसी तरह 'शिक्षा की भाषा' भी उस समय उर्दू ही कर दी । पूछिये इन सिक्खों से कि आपने इतने साल अपना राज किया तो पंजाबी को या गुरुमुखी को उस समय अर्थात् अपने राज में सरकारी एवं शिक्षा की भाषा क्यों नहीं बनाया ?

यदि उन्होंने पंजाबी, और गुरुमुखी लिपि को अपनाया होता तो फिर अंग्रेजों ने भी यही भाषा और यही लिपि अपनाई होती । अंग्रेजों के शासनकाल में भी सारे पंजाब ने इसे ही १०० साल तक पढ़ा होता । किसी पढ़े लिखे की क्या हिम्मत होती कि तीन-तीन भाषायें पढ़े और साथ ही साथ तीन-तीन लिपियाँ सीखे । ऐसा तो उत्कृष्ट मस्तिष्क वाले जो एक या दो प्रतिशत होते हैं, कर सकते हैं । इस तरह सारे पंजाब में पंजाबी गुरुमुखी में और अंग्रेजी लैटिन लिपि में चलती । हाँ, और कोई-कोई मुल्ला या मौलवी अरबी और कोई-कोई पण्डित संस्कृत व नागरी लिपि भी पढ़ता । नागरी फिर भी गुरुमुखी पढ़े हुए के लिए पढ़नी आसान होती है चूंकि गुरुमुखी से मिलती

जुलती है ।

सौ साल तक पंजाबी जनता पर पंजाबी एवं गुरुमुखी का प्रभाव होता जिस का वैचारिक प्रवाह संस्कृत स्रोतों से आता है। ऐसी दशा में पंजाब का विभाजन होना असंभव हो जाता। पर हुवा क्या कि उर्दू की लिपि पर्शियन थी। पंजाब में उर्दू के साथ २ पर्शियन और अरबी का अधिक प्रचार हुआ। इकबाल की विचारधारा ने पाकिस्तान का नजारा खड़ा किया। पाकिस्तान बना। पाकिस्तान के साथ हमारा दो बार युद्ध हुवा और अब और होने से भी कैसे रुकेगा जब कि पाकिस्तान भविष्य में फिर ईरान या अन्य ताकतों को अपने साथ मिलाकर हिन्दुस्तान को नीचा दिखाना चाहता है।

इस का सीधा दोष सिक्खों की अदूरदर्शिता और भाषा के प्रभाव की नासमझी पर आरोपित होता है।

आज हिन्दुस्तान में उससे भी अधिक गजब का तमाशा बना खड़ा है। इस का क्या परिणाम निकलेगा यह तो इतिहास ही बतायेगा पर अभी तक के स्वतन्त्रता के २७, २८ सालों में जो कुछ हुवा है वह तो सबकी आंखों के सामने ही है। बदकिस्मती हिन्दुस्तान की है। हाय! हिन्दी का भविष्य भारत ने किन मूर्ख मित्रों के हाथ में दिया है जो शत्रुओं से भी बुरे हैं!!

जब हिन्दुस्तान बना तो हमारे मनों में भावना जागी कि हम भी अपनी एक राष्ट्रीय भाषा बना लें। और हमने उस समय निर्णय किया कि हिन्दी को बनायेंगे। और लिपि उस की नागरी रक्खेंगे।

चूं कि हिन्दी के कर्णधार संस्कृत पढ़े हुए थे। उन्होंने पहिले

तो हिन्दी को संस्कृतमयी बनाया । बजाये इस के कि सर्व साधारण की बोलचाल वाली हिन्दी को बढ़ाते और उस की सेवा करते, इन्हों ने हिन्दी को ही संस्कृत की सेवा का साधन बना लिया । १९४७ में स्वतन्त्रता मिली । उस समय की हिन्दी से आज की हिन्दी क्या सर्वसाधारण की हिन्दी की ओर गई है या संस्कृत की ओर । सब स्वयं देख सकते हैं । फिर इन्हों ने हिन्दी का सम्बन्ध भारत में बोली जाने वाली भाषाओं से काट कर ब्रज, अवधी, मैथिली वगैरह के साथ जोड़ना शुरु कर दिया । हिन्दी की पाठ-विधियों में यह सचाई स्पष्ट दिखाई देती है । परिणाम क्या हुवा कि भारत की सब अन्य भाषाओं वाले हिन्दी से किनारा कर गये । हिन्दी भारत की भाषा तो क्या बननी थी, उत्तर प्रदेश की प्रान्तीय भाषा भी नहीं रह सकती है । इन्होंने कुछ ऐसा चक्कर डाला कि आम बोलचाल की भाषा को पुस्तकों की हिन्दी से भी अलग कर दिया । जिसे ये साहित्य की भाषा कहने लगे । इन्होंने पंजाबी आदि भाषाओं को स्वयं भी नहीं पढ़ा और न उन भाषाओं द्वारा हिन्दी को फैलाने का यत्न ही किया । ये हिन्दी को क्या फैलाते ? इन्होंने अपने अन्दर फैलाने की सामर्थ्य भी नहीं पैदा होने दी ।

जो कुछ ये कर्णधार कर रहे हैं उससे तो हिन्दी का भविष्य एक दम काला है । भाषा बढ़ रही है या घट रही है इस का पता उस की सीमाओं पर लगता है । कोई राज्य बढ़ रहा है या घट रहा है उसका पता उसकी सीमाओं पर होता है । हिन्दी का भी राज्य है । उस राज्य ने अपने आप बढ़ना है । उसे रुपया नहीं बढ़ाता । अगर बढ़ाता भी है तो बहुत कम । उसे कौन बढ़ाता है । उसे कुर्बानी बढ़ाती है तपस्या बढ़ाती है, अनथक लगन बढ़ाती है और

समझ के साथ की हुई भाषा की सेवा बढ़ाती है। आज हिन्दी के कर्ण धारों में खुदगर्जी है। ये जो कुछ जानते हैं (संस्कृत या अवधी या व्रज) बस उसी की डुग्गी पीट रहे हैं।

भाषा एक प्रकार का रास्ता है। यदि किसी देश तक पहुचना हो तो हमें रास्ता चाहिए, जाने के लिये। हिन्दी के रास्ते चारों ओर से वन्द हैं इस के कर्णधार बेखबर हैं। वे रास्ते क्या बनायें? रास्ता उस साहित्य से बनता है जो दो भाषाओं को मिलाता है। उदाहरणार्थ मैं कहता हूं कि मैं पंजाबी जानता हूँ गुरुमुखी जानता हूँ मुझे हिन्दी वाले क्या वह साहित्य दे सकते हैं जिसकी सहायता से मैं अपने आप हिन्दी पढ़ सकूँ। नहीं! या मैं हिन्दी जानता हूँ और हिन्दी की सहायता से पंजाबी व गुरुमुखी पढ़ना चाहता हूँ। क्या हिन्दी वाले मुझे वह साहित्य दे सकेंगे कि जिसकी सहायता से मैं पंजाबी पढ़ सकूँ। नहीं।

उस समय जब कि हिन्दुस्तान का विभाजन हुवा ऐसा साहित्य बनाना आसान था। पंजाब से उखड़ कर पंजाबी हिन्दी भाषी प्रान्त में आये। क्या उनका उपयोग उठाया गया? फ्रण्टीयर के प्रान्त (सरहद्दी सूबे) से हिन्दू यहाँ आये, क्या उन की सहायता से पश्तो-हिन्दी साहित्य वनाने के लिये प्रयत्न किया गया। लोग ब्रह्मा से उखड़ के हिन्दुस्तान में आये। इण्डोनेशिया और मलाया से उखड़ के आये, यूगैण्डा केनिया आदि से उखड़ के आये। वे उन-उन देशों की भाषाओं को जानते हैं। क्या हिन्दी वालों ने प्रयत्न किया कि उनकी सहायता से हिन्दी का सम्बन्ध ब्राह्मी आदि विदेशी भाषाओं से जोड़ा जाय?

अब उन देशों में जो भारतवासी रह गये, वे उन्हीं देशों में समा-

जायेंगे । उनकी सन्तानें भारत भाषा को भूल जायेंगी और जो यहाँ आयें है उनकी सन्ततियाँ भी कुछ सालों में विदेशी भाषाओं को नहीं जानेंगी । यह समय की बात होती है । हिन्दी वाले एक नई संस्कृतमय हिन्दी तय्यार करने में लगे हैं और कवितायें जिन्हें ये छायावाद आदि कहते हैं भाषा की पहेलियाँ सी बनती जा रही हैं ।

भाषा वह होती हैं जो सर्व साधारण की हो जिसे सर्व साधरण सरलता से समझें । सरल भाषा में कविता करना या लिखना अधिक प्रतिभा माँगता है । पर यहाँ तो उल्टा ही हिसाब है । जिसने मरना होता है वह अपने मरने के सब सामान आप जुटा लेता है । जिन हिन्दी वालों ने हिन्दी को मारना है उन्होंने इसको मारने के सब सामान जुटा लिये हैं । देश का पैसा बराबर बरबाद कर रहे हैं ।

पाठकों ने इच्छा प्रगट की है कि जेतल कवि जी के जीवन से उन्हें अभिज्ञ करवा दिया जाय । इस लिये कुछ शब्द उनके सम्बन्ध में लिख देने आवश्यक प्रतीत होते हैं ।

सन् १६०८ के जुलाई मास में उनका जन्म हुआ । उनका जन्म स्थान एक पुराना नगर है कि जिसका नाम भेरा है । यह जेहलम नदी के तट पर बसा हुआ है, और शाहपुर ज़िले में स्थित है । इस समय इस ज़िले का नाम सरगोधा हो गया है और अब यह पाकिस्तान में चला गया है । ये अपने पिता के सबसे छोटे पुत्र हैं । इन के पिता का नाम डाक्टर मैय्यादास और इनकी माता का नाम श्रीमती ईश्वर देवी था । ईश्वर देवी सन्तों की पुत्री थीं । इन्द्र जी के पिता जी ने स्वामी दयानन्द जी के व्याख्यान एवं

शास्त्रार्थ सुने थे और वे उनसे बहुत प्रभावित थे।

कवि जी जब करीबन छे साल के हुए तो इनके पिता जी ने इन्हें गुरुकुल काँगड़ी में प्रविष्ट करा दिया। चौदह साल तक विद्याध्ययन करने के बाद ये आयुर्वेदालंकार की उपाधि प्राप्त करके सन् १९२८ में स्नातक हुए। तदनन्तर भी इन्होंने अपना विद्याभ्यास जारी रक्खा। पंजाब यूनिवर्सिटी की कई परीक्षायें पास की। १९३७ में इन्होंने एम० बी० बी० एस० की परीक्षा पास की। तदनन्तर इन्होंने १९३९ में कलकत्ता से डी०टी०एम०एच० की उपाधि प्राप्त की। १९४० में ये सेना में प्रविष्ट हुए। और १९४६ तक सेना में ही चिकित्सक का कार्य करते रहे। द्वितीय महासमर में ये मलाया-सिंगापुर के रण क्षेत्र में थे। वहाँ इन्होंने जापानी भाषा का अध्ययन भी किया। १९४७ में ये पंजाब की सिविल मैडिकल सर्विस में प्रविष्ट हुए। और फिर १९६६ में उस नौकरी से अवकाश प्राप्त किया। उस नौकरी में ये सिविल सर्जन अथ च चीफ मैडिकल आफिसर के पद तक पहुंचे। अवकाश प्राप्त करने के बाद इन्होंने हर्याणा स्टेट इलैक्ट्रिसिटी बोर्ड में चीफ मैडिकल आफिसर का कार्य दो साल तक किया। और अब गुरुकुल काँगड़ी में चिकित्साध्यापन का कार्य कर रहे हैं।

दो साल अर्थात् १९७३ से ये कविता करने लगे हैं। अपने जीवन में पहिले भी कुछ कवितायें बनाई थीं। पर अब तो लगन के साथ कविता देवी की उपासना में संलग्न हैं। इन्होंने अपने जीवन काल में अनेकों पुस्तकों का सम्पादन किया। ज़िन्दगी के कई उतार चढ़ाव देखे हैं।

मैडिकल कालिज में ये कालिज की मैगजीन का सम्पादन करते

रहे, और कालिज से डाक्टर बनने के बाद फिरंगरोग, पाश्चात्य चिकित्सा सार तथा एक्सरे आदि पुस्तकें लिखीं। इन की कई हस्त-लिखित पुस्तकें पंजाब के विभजन के समय नष्ट हो गईं। इन की कई जापानी की शब्दावलियाँ युद्ध के दौरान में नष्ट हो गईं।

अभी तक इनकी काव्य-गंगा की निम्न धारायें प्रकाशित की जा चुकी हैं। रस धारा, हृदय धारा, सूक्ति धारा, करुणधारा, व रञ्जन धारा। अब मनोहर धारा प्रकाशित होने जा रही है। इस के बाद मनोरम धारा (जिसमें गीत तरंग और विविध तरंग हैं) तथा राजधारा प्रकाशित हो रही हैं। तदनन्तर और धारायें भी प्रकाशित की जायेंगी कि जिनकी हस्त लिखित प्रतियाँ हमें प्राप्त हो चुकी हैं। इनका एक नाटक 'आइ–एन–ए के युधवीरसिंह' भी शीघ्र प्रकाशित होगा। इस की हस्तलिखित प्रति हमें प्राप्त हो चुकी है। इन की एक पुस्तक 'आर्यभाषा हिन्दी की उन्नति कैसे हो?' भी हस्तलिखित दशा में हमारे पास है। जो शायद धनाभाव से प्रकाशित न की जा सके। इन्होंने संख्या–दर्शन (थ्यूरी आफ नम्बर्स) पर भी पुस्तक लिखी हुई है। इन की एक पुस्तक 'टैक्सोनोमी आफ प्लाण्टस् फार डिग्री स्टूडैण्ट्स' (हिन्दी में) हिन्दी ग्रन्थ एकेडेमी हर्याणा के पास प्रकाशनार्थ जा चुकी है। ये संस्कृत के काव्यतीर्थ हैं, हिन्दी के हिन्दी-प्रभाकर हैं और पंजाबी, उर्दू, मलाई आदि भाषाओं को भी जानते हैं। इनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी है।

इन का विवाह श्रीमती शारदादेवी जी से हुवा जो हिन्दी की एम०ए०, हिन्दी प्रभाकर और बी० टी०, हैं, तथा कई जगह प्रिंसिपल का कार्य कर चुकी हैं।

कवि जी की सात सन्तानें हैं। तीन लड़कियाँ और चार पुत्र। सब से बड़ी लड़की एम०बी०बी०एस०, डी०टी०एम०एच् (इंगलैण्ड) और एम० आर० सी० पी० (पू०) हैं। दूसरी लड़की एम०बी०बी० एस्०, डी० आर० सी० ओ०जी० (इंगलैण्ड), एम्०आर०सी०ओ० जी० (इंगलैण्ड), और एम० एस्०सी०, पैथोलोजी हैं। तीसरी लड़की बी० फार्मा०, एम०एस–सी०, (फार्मेकोलोजी) हैं। बड़े पुत्र सेना में लैफ्टिनैण्ट-कर्नल हैं। और उन्होंने ज्ञानी की परीक्षा (पंजाबी की) और एम०ए० (पू०) पुलिटिकल सायंस पास की हुई हैं।

दूसरे पुत्र फिज़िक्स की पी-एच०डी करने के लिये इंगलैण्ड गये हुए हैं। तीसरे पुत्र और चौथे पुत्र कालिजों में पढ़ रहे हैं। कवि जी इस समय हिन्दी-काव्य के अध्ययन को बड़ी तन्मयता से कर रहे हैं।

दो शब्द गीतिका छन्द के स्वरोच्चारण के सम्बन्ध में भी लिखने आवश्यक हैं। जेतल जी ने अधिकतः गीतों को गीतिका छन्द में लिखा है। गीतिका छन्द कई तर्जों में गाया जाता है। भाव के अनुसार गीतिका में लिखे गीत को उसी लय में गा लेना चाहिये कि जो लय उस भाव के अनुकूल हो। उदाहरणार्थ शान्त एवं भक्ति भाव में लिखे गीत को आर्य समाज के निम्नलिखित भजन की लय में गायें।

यज्ञ-रूप प्रभो हमारे भाव उज्जवल कीजिये।

यदि वीर रस के भाव वाला गीतिका छन्द हो तो निम्नलिखित गीत की लय से गाँयें।

सरफ़रोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है।

——रोहिताश्व

विषय सूची

—०—

मनोहर धारा

ईश तरंग

कवि की प्रार्थना--

जन्म पा द्विजराज कुल जो,
कांगड़ी गुरुकुल गये ।
क्लेश मैयादास सुत के
हे हरे हर लीजिये ।।१।।

ईश्वर के गुणों पर--

राम मन में जब तुम्हारे,
तीर्थ हो क्यों छानते?
सर्व व्यापी ईश त्यागा,
मूर्ति ईश्वर मानते ।
शैव मन्दिर, दक्ष मन्दिर
दर्शनों को तुम गये ।
हृदय मन्दिर देखना तो
भूल साजन क्यों गये ?।
सांस खींचे प्राण थामे,
योग साधन के लिये ।
यम नियम का पालना तो
भूल साजन तुम गये ।
द्वारिका या द्वार हरि में
किस लिए हो घूमते ?
द्वार मन का खोलना तो,
भूल साजन तुम गये ।।२।।
बांग मुल्ला थी न काफ़ी
क्या न काफ़ी शंख था,
लाउडस्पीकर क्यों लगाये,
शब्द क्या बिन पंख था? ३।।
जो दिखाता सकल जग को
वो हि दिखता क्यों नहीं ?
जो जनाता सकल जग को,
जानता जग क्यों नहीं? ।४।।
ध्यान कर तू उस प्रभू का,
जो बनाता जगत है ।
हड़पता तू मच्छियों को,
क्या न बगुला-भगत है ? ५।।
है न जिसका कोई अपना,
शरण पाता राम में ।
आक फलता फूलता है,
लहलहाता घाम में ।।६।।

ईश्वर पर निर्गुण सगुण विचार--

दूर उड़ते हो कहो क्यों
गुण बढाने पर दुरंग ।

निर्गुना दूंगा तुम्हें मैं।
डोर बिन ज्यों हो पतंग ।।
गोद मेरी में गिरोगे,
विहग सम जिसके न पंख,
प्यार पुचकारें सुनोगे,
जो न अब सुनते हो शंख७।।
निर्गुनी लट्टुआ लिया इक,
सगुन उसको कर दिया ।
हाथ लेकर जब चलाया ।
गुण उसी का हर लिया ।
यों न क्या प्रभु जी सगुण रे
और निर्गुण भी कभी ।८।।
सब कहें चाहे गुणी पर
निर्गुणी न गुणी बना ।
अर्क कहने से भला क्या
आक सूरज है बना ।।६।।

ईश्वर प्राप्ति के साधन, ध्यान ज्ञान आदि के विषय में--

बांग मुर्गा दे रहा है
किसलिये रे किसलिये ?
मुर्ग जो उठता सवेरे
जन जगाने के लिये ।
रोज़ बजते चार हैं जब,
बिगुल मानों फूंकता,
सिर उठा गर्दन बढ़ाता,
ज़ोर से कुकड़ूकता ।
कूक में मानों है कहता
सो रहे हो क्यों अरे !
ब्राह्म का य' मुहूर्त आया
ईश को लो ध्याय रे ।
प्रार्थना व उपासना का
वक्त है लो गान कर,
गुज़र जायेगी नहीं तो
ये घड़ी लो ध्यान कर १०।।
भरम की दीवार गिर गई
आंधियों से ज्ञान की ।
टाट माया की उड़ा गई
रामरति रे ध्यान की ११।।
लड़ पकड़ उसका मनुज तू
वक्त आया याद कर ।
पार जिसने थे उतारे ।
पाहनों की नाव पर ।।१२।।
भजन करने को कहा उसका
भजा नां एक बार ।
दूर जिससे भागना उसको
मिला तू बार बार ।
हाय कैसा है, गँवार? ।१३।।
कांच सी दुनियां है सारी,
यूं समझ मैं हूं रहा ।

सांच हैं तो एक प्रभु हैं
 रांच जिसमें जग रहा
क्यों न उसका ज्ञान करते ?
 क्यों न उसका ध्यान धरते?
ईश भगती मांगता है,
 भक्ति से तू क्यों भगा ?
राग विषयों से न विरति
 विषय रँग में क्यों रँगा? १५।।
पकड़ ले पतवार-माला,
 नाम हरि की नाव पर,
उदधि भव का बहुत दुस्तर
 बैठ करके पार कर ।।१६।।
स्वांग माला छाप तिलकों
 का बनाया मत करो ।
ईश झूठे मन न रमते ।
 ध्यान इतना तो धरो ।१७।।
माल हो पतवार तेरी
 नाव हरि का नाम हो,
भव पयोधि पार कर ले ।
 लक्ष्य हरि का धाम हो।१८।।
भजन हरि का मैं कहूं तो,
 तू न भजता है कभी ।
जो मना करता 'न कर तू'।
 तू वही करता सभी १९।।
बिछुड़ने का फिकर क्या यदि
 मन तुम्हारे साथ हो ।
जाय गुड़िया दूर चाहे,
 डोर यदि निज हाथ हो।२०।
चिन्तन न मन हरि का किया तो,
 ऐ मना फिर क्या किया ?
शुचिता न पा हरि से हरे ! हा !
 हा! सभी कुछ खो दिया।२१।
वारि मथ नवनीत ले बरु
 तेल सिकता से भले ।
भजन बिन हरि के न होगी,
 मुक्ति तेरी समझ ले ।२२।
छाप माला, वस्त्र गेरू,
 तिलक माथे पर लगा,
पहिन सुन्दर साज क्यों कर
 ईश को देता दगा ।२३।
यदि प्रेम का न पन्थ जाना
 नांहि जानी पीर भी
तो प्रेम ईश्वर के पुजारी,
 हो न सकते पीर जी ।२४।
पलित होगे केश शिर के
 दांत सारे गिर गये ।
लकुटिका पर कांपते हैं,
 पैर चलते हैं न ये ।
टांग पतली पर सरकता
 पायजामा शेष है,

ग्रौर जी लूं ग्रौर जी लूं,
कह रहा दरवेश है ।।२५।।
कङ्कणों को पत्थरों को
जोड़ कर मस्जिद बना,
तू नमाजें पढ़ रहा है,
पांच वारी सिर झुका,
क्या न तेरे मन समाया
है खुदा फ़ज़लुल् करीम ।
ढूंढता जो मस्जिदों में
क्या न तेरे घर रहीम ? २६।
वाद कर कर क्यों मचाते
जा रहे हो बहुत शोर ।
क्यों न भजते एक प्रभु को,
सबन दूजन भजन छोर ।
नद नदी तट पर न जाकर
एक प्रभु लै मन विभोर ।
सर्व व्यापक ढूंढ ग्रपनी
काय कीं ही हृदय कोर ।२७

ईश्वर प्राप्ति में दुःख की ग्रनुभूति–

नयन झर झर निर्झरों-से
रात दिन बहते रहे ।
ईश मुझको कब मिलेंगे ?
विरह दुख सहते रहे ।
सब रगें तन की हुईं ज्यों
तांत होंय रबाब के,
झन झनाते बज उठे तब
गीत राम–नवाब के ।२८।।
सुख सना संसार सारा,
ऐश कर कर सो रहा ।
'इन्द्र' दुख में है बिचारा
जागता ग्रौ रो रहा ।।२९।।
छोड़ हंसना चित्त रोने
में लगा तू जेतली ।
रुदन बिन वह क्यों खिलेगी,
चित्त की तेरे कली ।।३०।।

ईश्वरप्राप्ति में सुख का ग्रनुभव–

पान कर कर प्रेम हरि रस
मिट थिया जाती सभी ।
तृप्त होकर नर न फिर तब
ग्रौर पी सकता कभी ।३१।

ईश्वरप्राप्ति में विघ्न–

०नाव मेरी तनिक सी रे,
पत्थरों से जो भरी ।
भंवर जिसके हर तरफ रे
मांझियों की मति मरी ।
मांझियों की मति मरी रे,
ग्रायु जिनकी क्षणिक सी।

---

० कुण्डली ग्रष्टपदी

धार बीचों बीच लाये,
नाव मेरी तनिक सी ।।३२।।
मन सदन में आँय प्रभु जी,
आँय तो फिर कौन बाट ?
विकटता से बन्द हैं जब,
कपट कड़ियों से कपाट।३३।
(तब तलक हरि मन-सदन में
आँयेगे किस बाट से ?
बन्द जब तक निपट मेरे
द्वार कपट कपाट से ।३४।)
एक डायन मन बसी रे
पुत्र जिसके पांच हैं ।
रात दिन डस डस तुझे रे
वह नचाती नांच हैं ।
यदि न समझा तू अभी तक
अकल झूठी जांच है ।
समझ तू या नां समझ रे
गहनतम ये सांच है ।।३५।।
जाल माया के तने में
हरिन सम हम फँस गये ।
सुलझने के यत्न कर कर
भी उलझते ही गये ।।३६।।
जगत का यह जाल सारा
बहुत मीठी खाण्ड है ।
बात यूँ नहिं समझता गर,
तो तु पूरा भाण्ड है ।।३७।।
आस लेकर मैं चला था
हरि मिलेंगे आज ही,
मिल गई माया पिशाचिन
जगत जो तड़फा रही ।।३८।।
वायुवों से बेर हिलकर
फाड़ती कदली दलें ।
विषय आंधी इन्द्रियें झुक,
मोड़ती मन की कलें ।।३९।।
रात दिन रहता निरंतर
भोग के अभिमान में ।
क्षुब्ध मन टिकता नहीं तब
ईश के रे ध्यान में ।।४०।।
दूर प्रभु जी हो नहीं तुम,
समझ कर थे हम चले ।
आगईं मदिरेक्षणें जब
हो गये तव बावले ।।४१।।
पार भवसागर चले पर
पार कैसे हम करें ।
ग्राहिनी तिय छवि यहां पर
पकड़ लें तो क्या करें ।४२।।
छेड़ मत इनको अरे तू
शहद की ये मक्खियाँ,

कामिनी रमणी डसेंगी
पाद हरि रख अखियाँ।४१।
छेड़ मत जो कामिनी हैं
विष विषय से हैं भरीं ।
नागिनी सी काट लेंगी।
दाढ़ जहरों से भरीं ।४४।।
सक्त होकर नारियों से
भक्ति होती ही नहीं ।
ज्ञान आत्मा का न मिलता
मुक्ति होती ही नहीं ।।४५।।
कनक अरु ये कामिनी दो,
विष फलों से हैं अधिक।
मौत देखो बिन चखे ही,
कौन इनसा है बधिक ।४६।।
कनक अरु ये कामिनी दो,
नग्न अग्नि ज्वाल हैं।
दूर से ही ताप देकर
तप्त करते भाल हैं ।।४७।।
छू गये तो भस्म होगे,
यदि तुम्हें नां ख्याल है।
कौन इनसे बच सका है,
मूर्ति यम की, काल हैं ।४८।
वासना है देह में यदि,
काम की जलती ज्वलन।
राम तुझको नहिं मिलेंगे ।
नाम कर कितना स्मरण।४६।
लिप्त स्त्री में न हो तू
वक्त जाता जायगा ।
भजन प्रभु का कर नहीं तो,
बाद में पछितायगा ।।५०।।
छोड़ दे रस इन्द्रियों के
समय जाता जायगा ।
भजन बिन जो वक्त गुजरा ।
लौट फिर नहिं आयगा।५१।

प्रार्थना—कृषकों के लिये ।

ईश क्यों दुखिया कृषक जन
गांव में रहते हुए,
अन्न की कर कर उपज भी
भूख को सहते रहें ?।५२।।

प्रभु की कृपा—

दुष्कृतों का ध्यान कर कर
संकुचित था मन ही मन ।
पर न होकर विमुख हरि ने।
कर लिया अपना ही जन।५३
बात विगड़ी भी है बनती
नज़र नीकी चाहिये ।
करनि को नां देख रब्बा ।
मेहर तेरी चाहिये ।।५४।।

दुख न होता यदि सुखों में
ईश को जाता न भूल ।
सब्र कर अब छोड़ दई दई,
जो दई प्रभु ने कबूल ।।५५।

उपालम्भ--

समय पलटे तो पलटता,
कौन है न सुभाव को ।
दु:ख की यह बात, सजनी,
इसलिये क्या छोड़ते ?
काल कलि का जान प्रभु जी ।
करन करुणा भाव को ।५६
हाँको मत न यह कि
था लिया यश गीध उबार ।
ना मिलेगा यश यूँ सस्ता
याद रखना अब की बार ।
समझ लो गर पापिये को
ना उबारा भव से पार ।
फैसला है हो गया बस
व्यर्थ कहना बार बार ।५६।
बन्धु क्या तुम दीन के,
यदि मैं तरी नां बावली ।
तूठ हो क्या फिर रहे हो,
झूठ है बिरदावली ।।५८।।
ये बताओ हे प्रभो क्यों
अनसुनी कर दी पुकार ।
तारने का यश गँवाया
खुश हुए दो एक तार ।५६।
टेरता मैं नाम तेरा
दीनता से हूँ रहा ।
क्यों सुना है ना अभी तक,
क्या लगी जग की हवा? ६०।
आजकल के दानियों का
हाल कैसा है अजीब
दान दें ना एक कौडी,
हाय! भटकाते गरीब ।
भक्त के गुण तनिक पर जो
रीझ कर स्नेहों सने ।
बरकतों को जनगनों पर
बरसते थे घन बने,
हाय! क्या अब हो गया जो
सुनत हो नां तड़फने ।
बिसर कर क्या बान अपनी
आज के दानी बने ।।६१।।
बढ़गई है बहस अब तो,
देखि हैं जगराज जी,
जीतता है कौन कर कर
फिकर अपनी लाज की।६२।
अवगुनों को या गुनों को
मत गिनों ऐ प्रेमनाथ ।

'मैं तरूं' ऐसा करो चित,
पतित जन के साथ साथ।६३।

उपालम्भ--
यत्न मुझ को तुम तराने का
करो मत ऐ प्रभो !
पाप गठरी बहुत भारी,
क्या तराओगे विभो !
क्या कहूं मैं तुम हो नाजुक,
ना मुनासिब ज़िकर है।
भुगत लूंगा जो मिलेंगे,
फल मुझे नहिं फिकर है।६४

गुरु सम्बन्धी--
तू चुना मल्लाह कैसा ?
हाय ! पूरी जो बला !
पाहनों की नाव जिसकी,
नाव जिसका नां थला।६५।

ईश और भक्त के पारस्परिक सम्बन्ध--
ईश है यदि पत्नि मेरी
तो उसी का पति हुँ मैं।
ईश यदि पति रूप मेरे
तो उन्हीं की पत्नि हूँ।६६।
ईश हैं यदि मित्र मेरे
तो उन्हीं का मैं सखा।
मित्र हो जो मित्र का नहिं
मित्र ऐसा नाँ लखा।।६७।।
ईश हैं यदि कृष्ण मेरे
तो बनूंगी राधिका,
प्रेम-साधन कर्म करती
मैं उन्हीं की साधिका।।६८।।
ईश हैं यदि राम मेरे
तो न क्या हनुमान हूँ ?
सेवकों में परम उत्तम
सेवकों का मान हूँ।।६९।।
चाह सुख की अगर मनुआं
तो न दुख इन्कार कर।
जो भी देता है प्रभू वह
तू खुशी स्वीकार कर।७०।
जन्म को नर क्यों गंवाते,
हो बताओ ऐ सखे !
दाढ़ यम की में पड़े हो।
चित्त को हरि में धरो।
विषय-तृष्णा छोड़ करके
गान-गुण हरि के करो।७१।
जन्म नर का क्यों गँवाते।
स्वर्ण के हल क्यों चलाते।
अर्क मूलों के लिये।
चन्दनों को क्यों जलाते
लशुन पाकों के लिये।
जन्म नर का धार उत्तम

तप न तपते क्यों ग्रहो ।
व्यर्थ के कर काम साधो,
क्यों गँवाते जन्म हो? ।।७२।।

धर्म क्या है ?—

कुफ्र कह कर तू सता मत ।
जान है इन्सान में,
जो भला करता सभी का
जोर उस ईमान में ।।७३।।
दर्द इन्सानी मिटाना,
मज़हब सच्चा है खरा ।
कुफ्र कोई है न इन्साँ
शक न इस में है ज़रा ।।७४।।
भूख से जो हैं सताये
दीन हैं जो हैं गरीब ।
दान उन को देरहा तू,
स्वर्ग तेरे ग्रन करीब ।।७५।।
बाँट कर ग्रपनी कमाई
कर रहा खैरात है ।
भूलता तू है न ग्रल्लाह,
याद वह दिनरात है ।।७६।।
दुख न दूँगा मैं किसी को
कह रहा रमज़ान में ।
रोज़ रोज़े रख रहा है,
मस्त है प्रभु ध्यान में ।।७७।।
पर समझ मेरी न ग्राता,
जानवर करता हलाल
जानवर बेजान क्या महसूस
करते हैं नहीं ।।७८।।
फर्ज़ तेरा दुख मिटाना
दुख बढ़े मुतलक नहीं ।
छोड़ दे रे छोड़ दे रे
जीभ के ये जायके ।।७९।।
मौज लेता स्वाद के रे
क्या करेगा मायके ।
ग्रायगी नाँ क्या कयामत?
क्या बुरी नाँ तेरि शामत ।
हाय ! तब हो जायगी ।।८०।।

प्रभु को ग्रात्म समर्पण

ग्रधम जन तक को दिया जो
मोक्ष मुझ को दीजिए ।
बाँधने की चाह है तो,
बाँध निज गुन दीजिए ।।८१।।
हे प्रभो विनती यही है,
ग्राप से करना सँभाल ।
यदि न लो दरबार ग्रपने
तो बनाना द्वारपाल ।।८२।।

भक्ति आदि सम्बन्धी कुछ उक्तियां

रेड़ियो से भी है ऊंचा
शब्द अन्तर्द्वार का ।
यदि न सुन सकता उसे तू
व्यर्थ है गुरुद्वार का ।।८३।।

शंख हो तुम क्यों यहाँ पर,
दूर सागर से हुए ।
फिक्र छोड़ो मन्दिरों में
नाद दोगे हर सुबह ।।८४।।

तर्क करता व्यर्थ तू है,
युक्तियाँ या व्यंगवाद ।
इष्ट है न छुटा किसी का
ज्यों न अपना सहज स्वाद ।।

जीवात्मा परमात्मा का सम्बन्ध–

कुम्भ में था जल भरा कुछ
जलभरा ये कुम्भ भी तो
था रखा जल बीच में ।
कुम्भ टूटा तो हुआ क्या ?
ठीकरे जल में गिरे औ'
जल मिला जल में स्वयम् ।।

देह मानो कुम्भ सम है
जीव जिस में व्याप्त है ।
ज्यों हि टूटेगा घड़ा यह
जीव हो कर के स्वतन्त्र
ईश में मिल जायगा ।८७।।

श्रृंगार तरंग

प्रणय के व्यवहार रे !
प्रणय के व्यवहार जो हैं,
देखते हम पक्षियों में,
हैं विलक्षण से सभी ये,
जो समझ आते नहीं ।।१।।

साज सजकर मोर आता,
मोहने को मोरनी ।
नाच नचता पूँछ फैला,
मानिनी पर मोरनी ।।२।।

पूर्णिमा के चाँद को भी,
छोड़ती है चकोरनी,
चोर-सा यह छिप गया है,
घास बीच चकोर रे ।
सहन करती नाज नखरे
प्रेयसी, उस चोर के ।।३।।

चक्रवाकी चक्रवाकों,
के विरह से हो दुखी ।
पार कर चौड़ी नदी भी

आ मिली है दौड़कर ।।४।।
चातका निज चातकी को,
सिर हिलाता आ मिला ।
वत्तखा निज वत्तखी को,
चोंच से क्यों ठोंगता ?
ये विलक्षण है नहीं क्या,
प्रणय के व्यवहार, रे! ।।५।

कौन बैठी हो ?

कौन बैठी हो हृदय में,
मौज से हो आ जमीं ।
चाहना क्या और तुमको
प्रेम की क्या है कमी ।।६।।
ग़म दिया तुमने मगर तुम,
को न कुछ भी है ग़मी ।
हृदय को क्या फोलती हो
हृदय परदों में रमी ।।७।।
धक् धका धक ये न थमता,
एक बस तुम हो थमी ।
जान तुम हो, प्राण तुम हो,
मैं बना बस हूँ डमी ।।८।।
क्या बनी औरत है जग में ।
क्या बना ये आदमी,
हों सुखी दोनों नहीं तो,
हों दुखी, है लाज़मी ।।९।

रसिक जन गिरि सरिस स्थिर भी
प्रेम सागर में गिरे ।
रसिक मन वन मृग बिचारा
प्रेम पाशों से घिरे ।।१०।
रसिक हिय उत्तुङ्ग गिरिसे !
डूब जाते जँह प्रिये ।
प्रेम-सागर इक चौबच्चा
पशुनरों के तो लिये ।।११।।
पशुमनों के सामने तो
प्रेम 'सागर' ही नहीं ।
प्रेम उनका क्षुद्र इतना
प्रेम 'गागर' भी नहीं ।।१२।।
प्रेम की जो है कहानी
कौन उसको कह सके?
खाँड गूंगा खाय कर, बस
चेहरा मुसका सके ।।१३।।
सरसता है नेह रस से
तरसता जो तिय-हिया ।
जब धरा को चूमता झर
झर बरस कर घन-पिया ।।१४
गूंजती हो प्रेमतन्त्री
प्रेम कविता के सुरस,
सरस हो जब रङ्ग-रति का
डूब जा मत देर कर,

तैरने से तो मरेगा,
पार होगा डूब कर ।।१५।।
नेह गुञ्जन तो न सुलझे
यत्न कितने ही किये ।
और उलझीं प्रेम तारें,
प्रेम बन्धन की प्रिये ।।१६।।
सोच कर नाँ सोच पाये,
हार क्या तेरे हिये ?
प्रेम गुदड़ी तो सिली नाँ,
टाँक कितने ही दिये ।।१७।।
स्वार्थ वारे सब तुम्हीं पर,
प्राण न्यौछावर किये
हर घड़ी गिन गिन गुज़ारी,
आयु भर तेरे लिये ।।
कह सकूंगा, क्या तु मेरी,
और मैं तेरे लिये ?।१८।।
प्यार प्रिय पाना कठिन है,
यदपि कर तू तन सिंगार ।
बाल सिर के तू बढ़ा ले ।
वेणियों को ले सँवार ।।
लाख कर नाँ आँख प्रिय की,
हों सकेंगी यूँ उदार ।।१९।।
डूब कर कई बह गये या
कीचड़ों में धँस गये ।
नई जवानी में न क्या क्या
जुल्म हम से होगये ।।२०।।
क्या वतायें किन नशों में
होश अपनी खो गये ?
क्या बतायें कौन थीं वे,
साथ जिन के सो गये ?
दे गयीं जो जन्म भर के,
जागने के रोग ये ।।२१।।
दर्द मेरे दिल उठा जब
समझ को आई शरम ।
ो नहीं पहिचान पाये
जो न घायल थे स्वयं ।।२२।।
घर घर हुई जब प्रेम चर्चा
और निन्दा बढ़ चली ।
तो न ठहरी एक छिन भी
एकदम वापिस चली ।।२३।।
ऐ लला तुम कौन छलिया
से पढ़े हो तो कहो?
ले लिया हिय तो हमारा
पर न देते हो अहो! ।।२४।।
चित्त की अनुपम कहानी,
जब तरसता प्यास से ।
तो अघाता ही न पीकर,
फिर तड़फता आस से ।।२५।।
प्रीत की गति देख अद्‌भुत

नयन यदि लड़ते कहीं ।
तो कुटुम कुछ टूट जाते
और कुछ जुड़ते कहीं ।।२६।।

(पाठान्तर)
चतुर चित् से प्रीतियों में
दृग् उलझते जब सखे ।
टूटते परिवार देखे,
और मिलते भी लखे ।।२७

लावणी जो आकृति वो
भूषणें अपनी स्वयम्
वस्तुवें बनती सजावट
की सभी उनकी सदा ।।२८।।

रजनियों में कान्तियों से
चमकता जो चाँद है ।
लक्ष्म से कमनीय कम वह
हो गया है क्या कभी? ।।२९।।

वल्कलों के ओढ़ने से
रम्य रमणी भीलनी ।
नागरी से रम्यता में
कम हुई है क्या कभी? ।।३०।।

कमलिनी सौन्दर्य की जो
खान सुषमागार है ।
क्या न होती है सुशोभित
श्यामली शैवाल से ? ३१।।

रात की तम–कालिमा से
क्या न भूषित है हुई ।
प्रात की सुन्दर उषा की
स्वर्ण रूपी लालिमा? ३२।।

काला कलूटा भ्रमर भी
करता सुशोभित कमल को,
कमल जो है एक अनुपम
शृंग-मणि सौन्दर्य का ।।३३।।

रूप वाला रूप पी, पी,
मैं अघाता ही नहीं ।
क्या सलोने पानियों से
प्यास बुझती है कहीं? ३४।।

चित्र छवि का गर्व कर कर
के चितेरों ने लिखा ।
पर न पूरा चित्र कोई
था कहीं पर भी दिखा ।।३५।।

नित्य पूनम के हिमांशु
की छटा है छागई ।
जन्त्रियों से ही पता मिल-
ता कि तिथि क्या आगई ।।३६

अलक छवियों की कशाओं
के इशारे नाच कर,
नयन घोड़ों पै चढ़ा मन
भूल अपनी सुध व बुध ।।

दौड़ता चञ्चल हुवा तब
कर न सकता निज दमन।।३७

लाल सित व पीत काली
गौर आनन पर लगीं
बहुत सजतीं बिन्दियाँ सब
कान्त वदनों पर लगीं ।।३८।।

एक बिन्दी को लगादो
दस गुना होता है अंक।
पर यहाँ तो एक बिन्दी
अनगुना करती मयंक।।३९।।

तीक्ष्ण और सुदीर्घ नयनी
कम न तरुणी हैं यहाँ।
नज़र का ऐसा फरक कि
एक जिनके हैं जहाँ।।४०।।

गगन तक ऊँचा उठा था,
पर वड़ा न हो सका,
फाड़ कर देखा मगर वह
चख न चौड़ा हो सका।।४१।।

चम चमाते नयन उसके
घूंघटों के बीचि में
सुरसरित् के जल विमल के
मीन ज्यों हों वीचि में।।४२।

लाल मुख ताम्बूल से कर,
भाल पर इक बिन्दु धार,
कंधियों से केश सँवरा,
आँख में अञ्जन कु डार,
कर प्रिया चारों सिंगार
कर रही है इन्तज़ार।।४३।।

कान्त अंगों पर सुहाई
दीप्तियों की यों छवि।
चाँदनी की रजनियों पर
धूप छिटके ज्यों रवि।।४४।।

कठिनता बढ़ती उरज की
पाय यौवन और और
सूमता बढ़ती कृपण की
पाय धन ज्यों और और।।४५।।

न्याय के अनुमान सारे,
और श्रुतियों के प्रमाण।
कह रहे पर ब्रह्म का है
सूक्ष्म से भी सूक्ष्म मान।।४६

देख सखि रे कमर कितनी
अलख उसकी हो गई
दृष्टियाँ जो ब्रह्म देखें
योगियों की खो गईं।।४७।।

पैर पर मेंहदी लगाने,
एक नाइन आ गई
लाल देखे पैर, समझा
है लगी, घबरा गई।।४८।।

बालपन चाहे छुटा नहिं
झलक यौवन आगई ।
झिलमिलाती देह अब है ।
चमक दो की पा गई ।।४६।।
दीप्ति अंगों पर सुहाई
छांह की लेकर छवि ।
विश्व की ज्यों रजनियों पर
धूप छिटकाये रवि ।।५०।।
खन खन करते पायल वाली,
उबटन से है देह निराली ।
गौर पयोधर उर पर आली
मोह न लेवे मन जिसका वह
कौन हुवा है नर बलशाली ।।५१।।
समझ लेना,
तो न कोई आज भय,
भार में गुरुतम सघन
कामिनी के उभरते स्तन
के स्थलों पर भटकते मन
को करे नाँ यदि परावृत,
तो न कोई आज भय ।।५२।।
उभरी हुई कुच चूचकों की
नोक से उचका हुआ
परिधान का ओढ़ा वसन
औ' नग्न होवे ऊर्ध्वतन ।
तो न कोई आज भय ।।५३।।
हस्त बाहू उरस् कटियाँ
और कुञ्चित अलकलटियाँ
काम दीपन पञ्चवटियाँ
कह रही हों एक स्वर से,
आगया रञ्जन समय ।
तो न कोई आज भय ।।५४।।
भामिनी कर कर कनखियाँ
पलकियों की ले झपकियाँ
रख न कर निज राखियाँ
भटका रही हो आँखियाँ
प्रेम जग हो भावमय,
तो न कोई आज भय ।।५५।।
आम की अमराइयों में,
सघन गिरि की खाइयों में,
आ मिलें तनहाइयों में,
बहुत ही गहराइयों में,
सुन पड़े आती हुई गर
कोकिलों की मधुर लय
तो न कोई आज भय ।।५६।।

यक्षिणि का मयूर नर्तन

नीलमणि का क्रीड़ पर्वत
है कि जिसके मध्य में ।
स्फटिकमणि की वासयष्टी

काञ्चनी सुन्दर खड़ी ।।५७।।
नवल सुन्दर वंश जैसी
रंग में है मरकती ।
मूल में मणि वैद्रुमी हैं
जो बँधी है या जड़ी ।।५८।।
मोर उस पर बैठते हैं,
जब कि होता दिन गमन,
केकियों को कूकते हैं
नीलकण्ठी शोभनी ।।५९।।
ताल देती है करों से
औ' बजाती चुटकियाँ
छनछना कर कंकणों को
है नचाती, यक्षिणी ।।६०।।
चकित सी है त्रस्त सी है
बोल मुंह आते नहीं ।
क्या पता क्या होगया है ?
नज़र लग गई क्या कहीं? ६१।
इन उनींदी आँख से या
आलसी सी देह से ।
शोर तेरा सुभगता का
कौन मानेगा अरे ।
सखि, बताओ क्या हुवा यह
पिय-मिलन, विन नेह से? ६२
आँख लड़तीं आँख से हैं
आँख का होता कसूर
दिल दिलों से जकड़ जाते
और बँधते बे-कसूर ।।६३।।
झाँकती जब गई झरोखे
से लगा तब तीर एक ।
जो हृदय में जा चुभा रे
दे गया वह पीर एक ।।६४।।
माथ पर था तिलक उन के
ताकतीं वह चलि गईं,
मैं खड़ा था जिस जगह पर
आँकती वह गली गईं ।।६५।।
काम से जब आर्त होती
मेघ सा रोती कभी ।
जड़ अजड़ का ध्यान खोकर
चेतना खोती सभी ।।६६।।
हीर पर ज्यों मस्त हो, हो
डोलता राँझा रहा ।
उस तरह से वह भी उस पर
चेतना खोता रहा ।।६७।।
खगमृगों से पूछ कर वह
खोजता मुझ को रहा
यातनायें विरह दुख की
रात दिन सहता रहा ।।६८।।
आ पड़ी अनजान अबला

प्रेम की इस राह में ।
कर दिया हा वहुत दुबला,
तापकारी दाह ने ॥६९॥
हाय! छोड़ा ही न उस को
गरम निकली ग्राह ने,
ग्रौर चिपटी जो बुरी है
उस चुड़ैली चाह ने ॥७०॥
हर तरह उपचार कर कर
वर्ष में हर माह में
ज़िन्दगी मुश्किल से रोकी
ग्राखिरी इक साह में ॥७१॥
झटक में चढ़ती ग्रटा पर
तो उतरती भी झटक ।
नटत नट सी हर तरफ है ।
नेह नागर में ग्रटक ।
ताल उन्नत या नतोदर
सी फलित होती झलक,
देह नाज़ुक वहुत कोमल
पर नहीं थकती ज़रक ॥७२॥
प्रीत प्रीतम की उधर तो
सकुच कुल की है इधर ।
फिर रही है इस तरह से
ज्यों भंमीरी धुरक पर ॥७३।
जव मिलूं नाँ मैं उसे तो
जंगलों में घूमता ।
वह फिरे ज्यों मस्त हाथी
बेसुधी में झूमता ॥७४॥
गरम तेरे बोल मुझ पर
प्रेम रस की जादुवें,
ग्रौटने से खीर लौं जो
ग्रौर होते स्वादु वे ॥७५॥
लोचनों की ग्रौ' शरों की
एक सी गति है नहीं ।
शर चलाता एक है तो
दूसरा होता है विक्षत
लोचनों में तो न ऐसा ।
देख दोनों होंय विक्षत॥७६।

चाँदनी की रात ऐसी
थी कि जिस में हीर की
मातु कहती दूध मैंने
था पिलाया, लाज रख ।
छोड़ दे इस जोगिये को
मात ग्रायसु मान कर ॥
हीर खोय विवेक सारा
उलट देती है, जबाब ।
मातु! वह था दूध प्रभु का
जो कि मैंने था पिया ।

दूध दे सकती अगर तू
आज फिर देकर दिखा,
हाय ! कैसी रात थी वह
चाँद वालीकी कि जब
व्यंग के इस ढंग से, हा!
बात ठुकरी मात की ।।७७।।

चाँदनी की रात शीतल
इन्द्र जी की शारदा,
सुन रही हैं उक्तियों को
काव्य रस की लालची ।
कुल जगत के जन सभी भी
सुन रहे हैं ध्यान से
मुग्ध होकर मस्तियों में
बन गए हैं काठ से ।
हाँ न हूँ, नाँ चाँ न चूँ नाँ
वाह भी करते नहीं ।
दुःख की हो बात तो भी
आह, तक भरते नहीं ! ।७८।।

बोल मुख में नहिं रहे हैं ।
मुग्ध कैसा है कवि ?
चेतना से हीन जैसे,
क्षत हुवा होवे पवि ।।७९।।

सौन्दर्य मदिरा पान उसने
की है जब से कान्त की ।
छुटता न छिन भर भी नशा है
मस्त रहती है छकी ।।८०।।

शंका न चित संकोच भी नाँ,
फिकर नहिं दिन रात की ।
वाक्य क्या कि कुवाक्य क्या हैं?
बोलते भी नाँ जकी ।।८१।।

प्रेम नायक ने सिखाई
सीख नर्तन की अजब ।
रास रच रच, नाच नच नच
कर दिया इसने गज़ब ।।८२।।

क्या करेगा पुत्तली शाह्
पुत्तली जब नाच में ।
हार खायेगी जरूरी
टूट जायेगी ग़रूरी ।
याद आयेगी ओ नानी !
जब सतायेगी दिवानी ।
छोड़ भागेगा उसी दम
पुत्तली का नाचघर ।।८३।।

मान-वाली को मनाना,
छोड़ सावन मास में ।
क्षेम से रहना न मुमकिन्
कैम कुसुम सुवास में ।।८४।।

बादलें जब लरज़ गरजीं
कड़कियाँ बिजुरी सखी,

यौवनों की आग की भी
लपट भड़कीं री सखी ।
छोड़ मानें, मानिनी सब
पाँव पड़ियाँ री सखी ।।८५।।

अग्नि दाहक, पावसें भी
हृदय दोनों से जले,
स्पर्श से पहिली जलाती
तो लखे दूजी बले ।।८६।।

समय आया पावसी जब
क्या हठी रह जायगी ?
बाँस की गाँठें बँधे बरु,
मान की खुल जाँयगी ।।८७।।

पावसें बीती हैं जिनकी,
पास रहते निज प्रिया ।
अमर औ' चिरजीवि हैं वे
धन्य है उनका जिया ।।८८।।

समय पावस का सुहाया
सोच मत अभिसार कर,
छोड़ बक झक उठ झटो पट
नेह नदिया पार कर ।।८९।।

गाल दोनों को दबाकर
डिम्पलों से यूँ सजा कर ।
रूप ठग ने चाल की ।
नयन पथिकों के गलों में,
हास्य फाँसी डाल दी ।।९०।।

नेह गुञ्जन तो न सुलझी
यत्न कितने ही किये ।
और उलझीं प्रेम तारें
प्रेम बन्धन की प्रिये ।।९१।।

ख्याल तेरा क्या प्रिये है ?
हृदय क्या तेरे प्रिये ?
प्रेम गुदड़ी तो सिली नाँ,
टाँक कितने ही दिये ।।९३।।

स्वार्थ वारे थे तुम्हीं पर
प्राण न्यौछावर किये ।
हर घड़ी गिन गिन गुजारी ।
आयु की तेरे लिये ।
कह सकूंगा क्या तु मेरी ?
और मैं तेरे लिये ? ।।९३।।

पलक लिप् स्टिक् से रंगी है,
अधर पर अञ्जन मला ।
लीप कर माथे महावर
खूब आये हो लला ।।९४।।

किस लिये ये लाल माथा
अधर काले हैं, विदुर,
पलक दोनों पर लगी हैं,
पीक होठों की मधुर ।।९५।।

पलक अधरों पर गिराये

दीन बन चूमे नयन,
मानिनी के मान दुस्तर,
माथ लुढ़काया चरन ।।९६।।
बहुत भारी भीड़ को भी
दृष्टि तेरी चीर कर
के उधर जाती जिधर को
है निकल जाता पिया ।
और फिर तब लो बचा कर
नज़र सब की एक साथ
साथ जुड़तीं दो नज़र ।।९७।।
देखती अट्टालिका चढ़
घोर घन की है घटा,
छिनक भर चल ठिठकती है,
चमक जस विद्युच्छटा ।।९८।।
प्रिय मिलन को तड़फ़ती है,
मीन जैसी छटपटा,
हूल है ऐसी कि मानो,
दिल छुरी से हो कटा ।।९९।।
भीड़ भारी है कुटुम की,
बैठ गई वह पीठ कर,
है झपकती पलक इत उत,
सलज सुस्मित दीठ कर।१००
मटकती, सिर सुटकती, औ'
नैन देती सैन है ।
भवन की इस गुरु सभा में
बात यह बिन बैन है ।।१।।
काजलों सी श्याम आँखें,
देखती भर भर पियार ।
दौड़ता, अलि, क्यों खगों सा
नज़र-डाकू डार डार ।
नैन अब नीचे न होते,
घूरती सी बार, बार ।
कौन हैं वे? सखि, कि जिनका
आज करती वह निहार ।।२।।
भूषणों के बिम्ब पड़ते,
दर्पणी-सी गात में ।
तीहरे या चौहरे बन,
हैं चमकते रात में ।।३।।
रात का तम गाढ़ था जब
तब चली अभिसारिका,
कनक सा तन था चमकता,
दीप की मानो शिखा ।
तम छिपा देगा दमक क्या?
ओ बताओ, तारिका ?
राज़ तो खुद खोल देगा,
ज्योति-तन निज को दिखा ।।
जग मगाते अंग नग से
दीप-शिख सी देह है ।

रोशनी से दीप मद्धभ,
ऊजला जब गेह है ।।५।।
देखली हैं एक रामा,
रमण में उद्दाम है ।
तन नहीं मानो कि लतिका,
कनक की अभिराम है ।।६।।

पाठान्तर--
देखली है एक सजनी
जो कि रामा है अपूर्व ।
उग पड़ी मानो कि लतिका
कनक सी सुन्दर अपूर्व ।)

खिल रहा सु-मयंक उस पर
मृग न जिसमें श्याम हैं ।
नयन दो अञ्जन रँगे, कम-
नीय जो कि निकाम हैं ।।७।।
भंग भौंह विलास वाले
चपल चञ्चल हैं जहाँ
चकित युगल चकोर बाँधे
डोर कजली से तहाँ ।।८।।
नयन मुझ से मोह तज कर
साथ उनके लग गये ।
और उनके राग से ही
रक्त हो कर रँग गये ।
छिनक भर छवि देखली थी ।
रूप उनके ठग गये
छोड़ कर रस और सारे
प्रेम रस में पग गये ।
गुड़ डली से गाय जैसे
दूर मुझ से भग गये ।।९।।
ऐंच कर के तोड़ देता,
लाज की वह डोर रे
तुरत न[illegible] का [illegible]
बहुत ही मुँह जोर रे ।।१०।।
ध्यान पिय में यौं लगी कि
पिय बनी वह आप नार,
और फिर यह समझ कर कि
आरसी में हैं वही,
रीझती है, आरसी को
देखती है बार बार ।।११।।
भाल पर का तिलक चमका
[illegible] तरुणी चलि गई ।
झपक झाँका जब झरोखे ।
[illegible] सारी [illegible] गई ।।१२।।
भूल कर निज राह घर का
पकड़ ली ऐसी गली ।
थी कली तब नेह नव की
गेह प्रीतम जा खिली ।।१३।।
दृष्टि फिरती सब तरफ पर

ढूंढती अपना हिया ।
ठहरती उस ओर है तब
जिधर होता है पिया ।।
सूई कम्पस् की कि जैसे
फिर फिरा कर सब तरफ
ठहरती उस ओर ही है
जिस तरफ उत्तर दिशा ।
हाँ पिया नक्षत्र ध्रुव ने
वास अपना जँह किया।।१४।।

दूर चाहे हो खड़े पर
निकट का लेते हो मोद ।
नयन द्वारा बात कर के
हास्य करते हो विनोद ।।१५।।

आँगना में अंगना के
छांव बलमा की पतंग ।
बावली सी दौड़ छूती,
लोग होंते देख दंग ।।१६।।

नवल नेहों से छबीले
लाल का छल्ला लिया ।
प्रेम में भर चूम करके
छातियों से ला लिया ।
पहिन अंगुली पर उतारा
पहिन उसको फिर लिया ।
चाहना से भावना से
नार ने उर भर लिया ।।१७।।

मुन्दरी की आरसी में
देख प्रतिबिम्बित हुआ ।
सुख मिला सब देखने का
मन बहुत हर्षित हुआ ।।१८।।

देखती उनको कि पीछे
पीठ के बैठे हुए ।
आज देते लाज भी नाँ
धड़क भी, ऐंठे हुए ।।१९।।

ले रही है दर्शनों को,
आज सुभगा बार वार,
बीच में वह रोक वाली
घूंघटी नाँ है दिवार ।।२०।।

पैर में काँटे ने गड़ कर
भी मुझे जीवित किया ।
छोड़ लज्जा आ निकाला
प्रेम को साबित किया ।।२१।

प्रिय मनाता क्यों पियानहिं
पर रुठाता और है ।
रीझता जब खीझती है
ये मज़ा ही और है ।।२५।।

हास्य कर कर छेड़ता है,
छेड़ खानी दौर है ।
ये न समझो वह दुखी है ।

दिल सुखी सुखकौर है ।२३।
बात अपनी रात की रे
कह रही थी, कहरही थी ।
कुमुदिनी जब सुप्त होगई,
रात रानी लुप्त हो गई ।
लालिमा दिक् पूर्व की ले
आगये जब अंशुमाली,
तम भगाने के लिये ।
उदयाचलों पर छागईं जब
औषिकी आभा सुहानी
जन जगाने के लिये ।
गत रात की रतियों के श्रम को
कष्ट से सहती हुई,
दासताँ गत रात की रे,
वारवनिता, पण्य-योषा
याकि जीवी रूप की
निद्रालसा पहिली किरन भी
सह न सकती धूप की,
उदित प्रथित प्रभात की रे ।
बात अपनी रात की रे,
बिन कहे कुछ कह रही थी
व्यथित सी कुछ सह रही थी,

चपल मन की चंचला
चित वृत्तियों से ।
हृदय की चतुर्कोष्टिका
की भित्तियों से
टिमटिमाती पूर्व दिक्
की खित्तियों से,

बात अपनी रात की रे
कह रही थी, कह रही थी ।
जघन उसके थे न हिलते
व्यथित मन से सह रही थी ।
ध्यान में कुछ बह रही थी ।
हे कवि, हम को बताओ,
क्या पियासा काम की कुछ
कामिनी मन जो कभी थी
वह न क्या अब रह रही थी?

परिधान जिसका हट रहा था
वायु विट् से उड़ रहा था ।
कामियों की लोलती
कल्लोल करती
परम लालायित हुई औ'
चोर बन बन
तारिकों की बंक चितवन
चीकने जिन मदन के
उरुतोरणों में मचल करके

अचल होकर भी न
आप्यायित हुई !
तरल रस की प्रार्थिनी
वह तोरणें तो
अब न सीधी रह रही थी।
काँपती थी, थर थरा कर,
कलश उन पर के ढुलक कर
झुक रहे, आभुग्न हो कर,
दूर दोनों पद हुए।
सुरत की पर लोलुपी
विट् वायु फिर भी
मर-मराती फरफराती
बह रही, उस ओर थी
कटि पटों की अट पटीसी
उड़ रही जँह छोर थी।
रोम कोमल राजियों में
तरल पुलकों को उठाती
लुलित हो हो विलसती है।
हाय ! जब कि अंगना वह
रंग में न 'अनंग' रँगना
देह कर न नंग अपना
संग करना चाहती है ।।
कान्ति मुख पर की कि जिसकी
म्लान सी, कुम्हला चुकी है।
और मुर्झाये हुवे से
फूल सी झुलसा चुकी है! २६॥

पलक लाली से हैं लतपत
अधर पर अञ्जन मला।
लीप कर माथे महावर
खूब आये हो लला ।।२७।।

पलक अधरों से मिलाये
दीन बन चूमे नयन।
मानिनी ना मान पाई
माथ लुढकाया चरन।।२८।।

हाय! मानी, मानिनी नहिं
सुमन तन में कठिन मन,
विनय अनुनय की न सुध ली
चरण लुण्ठित यदपि जन ।।

पाठान्तर--
मानिनी ने मान ठानी
सुमन तन में कठिन मन।
विनय अनुनय भी न मानी
जन रुढ़ा चाहे चरन ।।

--o--

याचनायें जब नगाईं
सो गया तब जा अलग।
मैं समझ वह सो गया है

पास जा हूँ चूमती ।
हँस पड़ा वह मैं खिसाई,
देख कर मेरा खिसाना
बाँह पकड़ी गल लपेटी
साथ अपने थी लिटाई ।
मैं खुशी के साथ लेटी,
लिपट उर बाहू समेटी
'नाँ न' करने फिर न पाई
याचनायें नाँ नगाईं ।।३०।।

शीत लगती जिन घरों में
ग्रीष्म वाली भी दुपहर ।
वे उशीरों से बने घर
अब तपाते ज्यों ज़हर ।।३१।।

पावसों की रुत सुहानी
मेघ गरजे मोर नाचे
हृदय में उमगें उठीं ।
प्रिय चले तुम क्यों विदेश?
कामिनी निज कामना
कहती हुई थी यों रुठी,
क्यों लजाते हो नहीं तुम ?
प्रणय कैसा यह प्रणेश? ।।३३

विरह का सन्देश देना,
काक से कहने लगी ।
"धूम्र से तन कृष्ण मेरा
आग जब जलने लगी" ।।३४।।

विहग आधी रात बोला,
क्यों न लेती चैन हो ?
विकल हो क्यों डोलती हो?
शयन-सूनी-रैन में ? ।।३५।।

विरह में जिस जिस जगह पर
विरह के आँसू गिरे ।
घूँघची बन उग पड़े सब,
रत्तियों से वन घिरे ।।३६।।

अंग सारे तप्त मानो
भभकते अंगार थे ।
लाल कञ्चन देह जानो
अग्नि के शृंगार थे ।।३७।।

फूटता तिड़तिड़ तिड़कता
खील बनता फूट कर ,
रेत तपती में ही गिरता
पर न जाता छूट कर ।।३८।।

सब परिन्दे पास के औ'
फूल-फूले वृक्ष भी,
आग से काले हुए हैं,
राख हो गै ऋक्ष भी ।।३६।।

देह जल कोयल भई औ'
रत्तियाँ नैनें झरें,
ताँत पतली सी नसों को

विरह की धुनियाँ करें ।।४०।।

मेघ सखि इन को न मानो
धूम्र है यह अवनि का
जगत जानो जल गया हो,
ये उसी की जवनिका ।।४१।।

माधुरी का नखरा

माधुरी ने घण्टियों को
टन टनाया तीन वार
ताकि आये नौकरानी
बिन कराये इन्तज़ार ।।४२।।

जब कि आया कोई भी नाँ
हो गई कुछ देर दार,
पैर मारे तब जमीं पर
धम धमा धम तीन वार,
देख फिर कोई न आया
तम तमाया चेहरा ।
सुर्खियों से लाल हो कर
चम चमाया चेहरा ।।४३।।

जेब से लटकी हुई इक
झन झनाती चेन थी ।
जो सुनहरी रोल्ड-गोल्डी
मातृवर की देन थी ।
खींच कर के वक्त देखा ।
क्या बजाती है घड़ी ? ।।४४।।

ये घड़ी थी बहुत सुन्दर
साठ हीरों से जड़ी ।
नाज़ से तव फिर दुवारा
लो धरा तकिये पै सिर ।
सो गई ज्यों बेखबर हो,
बेखबर को क्या फिकर? ४५।

खन खन करते पायल वाली
कुंकुम उबटन देह निराली
गौर पयोधर उर धर, आली,
मोहिन मूरत मोहन वाली
कौन हुवा है नर बलशाली
जिसके मन न भाई, आली।।

दृष्टि मेरी रूप लोभी
देख वस्तु रूप वाली ।
क्या कभी झुक जायगी ?
हवस उठती जो कि दिल में
रूप पाकर के अनूपी
क्या कभी रुक जायगी ?
'रूप' होकर दृष्टि-गोचर
हृदय का आल्हाद बनकर
मोद देता है निरन्तर ।।४७।।

छोड़ दो जो कैद में:-

राजपूतन एक युवती
गीत गाती प्रीत के,
कड़कती इस धूप में भी
सिहर देती शीत के ।।४८।।

आरही है तान मीठी
पथिक जन के कान में,
रेत औ' गुब्बार वाले
साँभरी मैदान में ।।४९।।

ग्रीष्म का है रौद्र ताण्डव
क्या उसी की बाँह में,
वृक्ष जब कोई नहीं तो
ऊंठ की ही छाँह में ।।५०।।

स्वागती ये गीत तेरे
आगतों की राह में,
ठण्ड देते हैं दिलों को
भभकते इस दाह में ।।५१।।

श्रवण का सुख प्राप्त करते
पथिक जब विश्राम में,
भूल जाते हैं पथों को,
यामिनी आयाम में ।।५२।।

दूर दयितायें इन्हों की
कर रही हैं इन्तजार ।
भूल जायें ये न उन को
तोड़ दें, नाँ प्रेम तार ।।५३।।

गीत गाकर राजपूतन
औ' सुनाओ मत इन्हें,
छोड़ दो जो कैद में, अब
होगये तेरी, उन्हें ।।५४।।

कोमलाङ्गी गौर वदना
फूल सा जिसका हिया ।
हाय ! क्यों है गीत गाना
बन्द इसने कर दिया? ।।५५।

कौन मुझ को, वह बताओ
फिकर जिसने है दिया?
और है नहिं कोई वह
हाय ! इसका ही पिया! ।५६

चिन्तपुरनी की युवती

आम की अमराइयों में
मञ्जरी मुकुलित हुईं
बौर से आबूर शाखें
माधवी की हो गईं ।।५७।।

चञ्चुरूप विपञ्चिका से
छेड़ती पञ्चम सुरें
कोंकिलें निज काकली से
मधुर बोल सुना रहीं ।।५८।।

पिक धुनों में निज धुनों के

सुर मिलाती नायिका
चिन्तपुरनी वादियों में
गीतियाँ हैं गारही ।।५९।।

प्रेमिका के प्रतिः–

चिर प्रतीक्षा थी जिन्हों कि
आरही हैं सामने
उर नहीं पर चैन मेरे,
चेहरा नहिं दीखता ।।६०।।

चूंकि ज़ुल्फों से ढका है ।
शशि घनों से छा रहा ।
कवि कहे, 'आशिक बतावो,
सोचते हो क्या खड़े ?।।६१।।

सोचता हूँ "वो उठावे
ज़ुल्फ को खुद हाथ से ।"
पूछता कवि फिर उन्हीं से
सोच में हो क्यों पड़े?

'आरजू वो खुद बुलावें
तब कहें हम 'हाँ' उन्हें ।।६२।।

जब न दिखते मुख उन्हों के
ज़ख्म-दिल होते हमें
नश्तरों के घाव गहरे
बरछियों से ज्यों बिंधें ।।६३।।

ज़ुल्फ अपनी को सँवारो
चेहरा देखें ज़रूर
मान छोड़ो अलक बाँधो
वर्ना मिटेंगे हम हुज़ूर ।।६४।।

देखना है क्या लिखा है ?
क्या मेरी तकदीर है ।
देखना है क्या करेंगी ?
क्या रही तदबीर है ? ६५।।

क्रेसिडा

चाँदनी की रात ऐसी
थी कि जिसमें ट्रायके ।
शहर की दीवार पर चढ़
ट्रायलस था देखता ।

क्रेसिडा के प्रेम जकड़ा
छावनी यूनानियाँ
उरस् के अन्तस्तलों से
गरम साँसे छोड़ता ।।६६।।

जानकी

चाँदनी की रात ऐसी
थी कि जिसमें जानकी ।
हेम हिरनी मारने को
लालचों में डूब कर ।

भेजती है राम लक्षमण
कौन फिर रक्षा करे? ।।६७।।

हेम हिरनी एक माया
छल गयी क्यों राम को?

ले गया रावण उठा क्यों
जानकी अभिराम को ।।६७।।

जैसिका

चाँदनी की रात ऐसी
थी कि जिस में जैसिका
छोड़ कर के वृद्ध अपने
बाप को भी, भाग कर
गोद बैठी जा बलम के
प्राण प्रिय लौरेन्ज़ के ।।६९।।

थिसबी

चाँदनी की रात ऐसी
थी कि जिस में सिंह की
देख कर परछाईं सी थी
प्रेमिका थिसबी डरी ।।७०।।
भीत होकर भागने में
गिरगया उसका रुमाल,
पाइरेमस् देखता है
उस पड़े रूमाल को ।।७१।।
देख कर के सोचता है
मर गई है प्रेमिका
सिंह उसको खा गया है ।
शेष बस रूमाल है ।।७२।
मैं रहूँ जीता न होगा
जब मरी मेरी प्रिया ।
ख्याल ऐसा कर बिचारा
पाइरेमस् मर गया ।
आप अपने आप ही वह
आत्म हत्या कर गया ।।७४।।
हाय! थिसबी क्यों डरी तू ?
दौड़ गई ना मिल सकी
ओस छाये घास पर निज
पाँव रख रख कर भगी ।
बैबिलोनी देश कोसे
सिंह की उस छाँव को ।।७५।।

रांझा

चाँदनी की रात ऐसी
थी कि राँझा प्रेम में
झंग् सियालों में जगाता
अलख, गाता हीर के
गान प्यारे, प्रेम रस में,
एक तारा हाथ ले कर
छोड़ कर के तख्त-हज़ारा
भीख लेने आगया ।।७६।।
भेस पहिने जोगियों का
बन के पूरा जोगिया
आगया रे आगया ।।७७।।
सिंगार नौ सौ कर गई थी
मोहने पति को प्रिया ।
मोहित हुवा पति पर नहीं

सिंगार तो फिर क्यों किया?

प्रेम लेकर के कुचैली
मोहने पति को गई
प्रेम-मोहित हो गया पति
क्यों न प्रेमिन तू भई? ।।७९।।

मैं तरसता जिस प्रिया के
हूँ मिलन को यदि प्रिया वह,
वाम बाहो! फड़क कर के
तुम मिलाओगे हमें ।।८०।।

वचन देता हूँ तुम्हें कि
दूर रख कर दक्षिणी को
भेंट में प्रिय की मैं निश्चय
से मिलाऊंगा तुम्हें ।।८१।।

मैं तरसता जिस प्रिया के
हूँ मिलन को वह प्रिया यदि
वाम नयने फड़क कर तुम
गर दिखाओगे हमें ।।८२।।

याद रखना भूलना नाँ
शपथ मेरी, वचन मेरा
जब करूंगा भेंट उससे
बन्द करके चक्षु दहिना
एक इकला खोल वामे!
प्रिय दिखाऊंगा तुम्हें ।८३।।

उन्हें

तान आलापें न छेड़ीं,
मैं सुला लेती उन्हें ।
गान मीठे भी न गाये,
मैं सुला लेती उन्हें ।।८४।।

सोहिनी बन क्यों न सोही
जड़ बना लेती उन्हें ।
मोहिनी बन क्यों न मोही
मुग्ध कर लेती उन्हें ।।८५।।

सार, कर अभि क्यों न आई
श्रान्त कर देती उन्हें
कान्ति बन मैं क्यों न चमकी
कान्त कर देती उन्हें ।।८६।।

मूर्त बन मैं क्यों ढलीनाँ
भगत कर लेती उन्हें
फूल बन मैं क्यों खिली नाँ
सक्त कर लेती उन्हें ।।८७।।

कामिनी बन क्यों न आई
काम रँग रँगती उन्हें
रुक्मिनी बन क्यों न आई
श्याम सा सँगती उन्हें ।।८५।।

यामिनी बन क्यों न आई
अंक लेती शशि बना,
मानिनी बन क्यों न आई

डंक देती मान का ।
क्यों न आई, क्यों न आई
क्यों न कुछ कर पाई मै? ।।८६

सोहणी

चाँदनी की रात ऐसी
थी कि जिस में सोहणी ।
प्रेम का तूफान ले कर
जोश में आगे बढ़ी ।।६०।।

उरस् में थी धधक भारी
विरह की वेदन कड़ी ।
चाँद दुखिया रात में तब
छिप गया ओ छिप गया ।।६१

घोर घन लो, छागये थे
जगत में तम आगया ।
उस समय तब सोहणी वह
बादलों की गरज़ में,
बिजलियों की लरज़ में,
आँधियों क (के) गुवार में औ
बारिशी बौछार में ।
जोश से आगे बढ़ी ।।६२।।

सामने थी चन्द्रभागा,
रोष से बहती हुई ।
प्यार माही की सताई
पार नद करने चली ।।६३।।

हाथ में लेकर घड़े को
मृत्तिका का था घड़ा ।
जो न अब तक था पकाया
आग बीच कुम्हार ने ।।६४।।

तैर करके पार करने
कूदती है सोहणी,
चीरती दरिया तरंगें,
शेरनी बनकर बढ़ी ।।
तैर कर के पार करने
की लगन मन में चढ़ी ।।६५।।

बीस भी नाँ हाथ मारे
धार बीच समा गई ।
चाँदनी की रात ज़ालम
जो कि काली बन गई ।।६६।।

आसमाँ तेरा सितम तू
बादलों से छा गया ।
चन्द्रभागे तू भि निर्दय
सोहणी को ले गयी ।।६७।।

हाय ! सोणी प्रभु भि तेरे
थे हुवे क्यों बेरहम ?
माहिये से तू मिली नाँ
लोल लहरों में घुली ।।६८।।

वृहन्नला

चाँदनी की रात ऐसी

थी कि जिसमें पहिन लँहगा ।
हाव भावी भंगियाँ भर
नाच नचती वृहनला ।
दंग करती सकल जग को
नाच की दिखला कला ।।९९।
धनुष की टंकार है नहिं
छुन छुने हैं घुंघरू की
डोर है नहिं हाथ में अब
कंकणें हैं युवतियों की ।।२००
डौल वाले स्तम्भ उरुवर
थामते पतली कमर ।
पद फुडकते कूद लेकर
पायजेबें बाँध कर ।।१।।
उत्तरा है सहित उत्तर
मद्य का कुछ पान कर,
घाघरे की झलक झालर
देखती है आँख भर ।।२।।
उड़ रही हैं जो कि ऊपर
चक्करों को बाँध कर ।
जगत का जो प्रथम भटवर
वो धुरन्धर जो धनुर्धर
चकित करता नाच नच कर ।
आज सारा विश्वनर ।।३।।
जाग देखीं साँकलें जब
बन्द सारे थे कपाट ।
आगये थे वे कहाँ से
निकल भागे कौन बाट ।।४।।
है रात बीती बहुत सुख की
मान, सोयें हों कि साथ ।
दीवार में से मिल लिये हैं,
हाथ से छुटता न हाथ ।।५।।
छाँह छू छू कर छबीली
बावली सी फिर रही,
देख गुडिया ललन की जब
आँगना पर उड़ रही ।।६।।

माधवी की चिर प्रतिक्षा:–

मौर मुकुटें शीश पर हैं ।
किसलयों का भेष है ।
आम में अब प्रेम रस का
उठ रहा आवेश है ।।७।।
नभ तलों से चाँदनी छिट
का रहे राकेश हैं ।
कोकिलें भी गा रहीं सुर
पञ्चमें सुविशेष हैं ।।८।।
माधवी की शाख ये नहिं,
बाँह फूलों से भरी ।
आज दिल ठण्डा करोरी
राज ऋतु की ऐ परी ।।९।।

दो लपेटे स्तम्भ को सह--
कार के री साँवरी ।
देर का क्या समय है रे
झट करो री बावरी ।।१०।

हर कली का है इशारा
वायु भी है कह चली
देर क्यों तुम कर रही हो
लाज छोड़ो बावली ।।
माधवी की चिर प्रतीक्षा-
हो गई निःश्शेष है ।।११।।

पवन

चाँदनी का वस्त्र झीना
लहरता औ' झूमता,
विमल बहता पवन भीना
तरु मृदुल को चूमता ।।१२।।
सरस सरसों का महीना
कण परागें धूमता,
सुर सुनाता भ्रमर वीना,
वन व उपवन घूमता ।।१३।।
आ गया लो पवन प्यारा
शीत शीकर से मिला
हृदय-हारी अञ्जना हित
परम प्यारी प्रीत ला ।।१४।।
चाँदनी की रात जिस में
प्यार भर लाया समीर ।
मिलन वाले सुख भरे हैं,
विरह वाले हैं अधीर ।।१५।।

शिव के शाठ्यः--

पार्वती पतिदेव जी से
एक दिन हैं पूछतीं ।
कौन है जो शीश पर चढ़,
मौज से बैठी हुई ?।।१६।।
धन्य योषित् वह जिसे कि
शीश पदवी प्राप्त हुई! ।

२

और है नहिं कोई, प्यारी
शशि कला ये, प्रेयसी ।।१७।।

३

शशिकला कह कर ठगो मत
नाम इस का शीघ्र लो ।

४

नाम ही तो है बताया
भल हो तुम क्यों गई ?
रोज का परिचय तुम्हारा
याद फिर क्यों खो गई? १८।।

५

दार है वह कौन जो कि
सिर बिठाई देव ने ।

दाह बन मन को जलाती;
इन्दु को नहिं पूछती ।।१९।।

६

यदि नहीं विश्वास है तो
लो बुला विजया सखी,
और उस से पूछ कर के
सत्य कर लो पारखी ।।२०।।

७

इस तरह की शिव-शठें, कवि
मोद-दायी हैं परम,
धर्म पत्नी से छिपायें
सुर सरित् को शिव रसिक, रे
मोददायी हैं, परम ।।२१।।

(विशाखदत्त के मुद्राराक्षस के धन्याकेय के आधार पर ।)

प्रिया का उपालम्भ प्रिय को:–

मत कहो प्यारी मुझे जब
प्यार तुम में नाँ रहा ।
कामिनी ने मान पूर्वक,
रुष्ट मन से था कहा ।।२२।।

वर्षा काल में विदेश चले हो !

जलद नभ में हों गरजते,
समय वर्षा का विशेष !
और रिमझिम हों बरसते
तब चले तुम हो विदेश! २३।

ललन का चलना सुना तो
आँख से आँसू झरीं
सखि न समझे रुदन आँसू
अँगड़ाई सी भरीं ।।२४।।

देख जुगनू एक विरहिन
कर रही है यों पुकार,
आव अन्दर शीघ्र सारे
बरसते बाहर अंगार ।।२५।।

मैं हुई बौरी कि सारा
गाँव बौरा हो रहा ।
शीतकर कहते उसे कि
जो तपाता ही रहा ।।२६।।

शिशिर तो निकला सो निकला
दूर करते विरह ताप
गर्मियाँ निकलेंगी कैसे
पास रहना भी है पाप ।।२७।।

चिन्तिता राधिका––

चाँदनी की रात ऐसी
थी कि ज़िसमें राधिका
द्वारिका में बाट प्यारे
श्याम की थी जोहती ।।२८।।

व्याध ने घायल किया था ।

मार कर के तीर खर
श्याम आये थे न घर पर
राधिका बेहाल थी ।।२९।।

बेवफा ईनियस्--
चाँदनी की रात ऐसी
थी कि जब कार्थेज में
मध्य-सागर के तटों पर
बालमा डीडो खड़ी ।।३०।।

हाथ में ले शाख विल्लो
बार-बार डुला रही ।
पर तटों से दूर ज़ालिम
रोम वासी ईनियस् हा
देश को वापिस गया ।।३१।।
(विल्लो को बेद मजनूं कहते हैं ।

बेवफा दुष्यन्त
चाँदनी की रात ऐसी
थी कि जिस में भरत की,
माँ सिसकती रो रही थी,
आँसुएं छमछम बहा ।।३२।।
धर्मरानी कुन्तला को
छोड़ कर दुष्यन्त ने
ज़ुल्म कैसा कर दिया रे
हाय ! री ओ क्रूरता! ।।३३।।

विचार वैचित्र्य
नाम लैला का न लेना
गोर मजनू सामने ।
चैन लेने दो उसे वह
जो कि दी है राम ने ।।३४।।

नाँ परागें नाँ शहद है
तू बँधा है क्यों अलि?
क्या करेगा उस समय तू
जब खिलेगी यह कली? ३५।।

रसिक जन गिरि से भि ऊंचे
डूब जाते जँह प्रिये ।
प्रेम सागर वह चौबच्चा,
पशुनरों के तो लिये ।।३६।।

ऐ जपा के कुसुम क्यों तुम
निज वड़ाई कर रहे ?
अलि हिये नाँ हो रसे रे
गन्ध भी नाँ मधु बहे ।।३७।।
क्यों बसेंगे हम यहाँ पर
जब निभेगी ही नहीं
नीतियाँ या रीतियाँ रे
नेह नगरी में नहीं ।।३८।।
मान इतना प्रिय करे यदि
तो उपजता मन में डर,

सोंठ मीठी स्वाद में हो
तो करे विष सा असर ।।३९।।
मुक्ति में यदि प्रिय मिलें नाँ
तो न मुक्ति पाइये ।
नरक में यदि प्रिय मिले तो
नरक सा घर चाहिये ।।४०।।
सेवते श्रुतियाँ तरौना
तो तरा-ना ही रहा ।
नाक वासी बेसरे को,
मुक्त-संग मुकती महा ।।४१।।
पितृ-मारक पुत्र जन्मा
ज्योतिषी को दुख हुआ
जान करके पुत्र जारज
बहुत ी तब सुख हुआ ।।४२
गीत गाता था उपासक
रात सारी जागता
पर न देवी पुण्य भावों से
उसे थी प्राप्त ई ।।
देवि भी वह जो जगत में
हर जगह में व्याप्त है ।।४३।।
पर मुझे तो पाप में भी
देवि मेरी प्राप्त थी ।
प्राप्त थी अव्याप्त भी वह
ताप साधन के बिना ।।४४।।

बालिका के खिलौने

छोड़ देती है यहाँ पर,
या वहाँ पर या कहीं ।
क्यों उठाकर के खिलौने
जोड़ कर रखती नहीं? ।।४५।।
झाड़ना मैं चाहता हूँ,
बहुत हो कर के खफा ।
और कहना चाहता हूँ,
क्यों न घर रखती सफा? ४६।
पागलों-सा क्यों बनाती
हो मुझे ऐ बालिके?
क्यों न तुमने हैं सँभाले
डाल अन्दर डाली के ।।४७।।
(नोट् डाली को गाते हुए डालि
पढ़ा जायगा ।)

२

शाम का जब वक्त आता
दौड़ कर जाती है तब ।
तान कपड़ा बिस्तरे में
नींद ले सोती है अब ।।४८।।
उस समय मैं देख कर बिख-
रे खिलौने हर तरफ़,
ध्यान करता हूँ उसी के
चेहरे का ही सिरफ़ ।।४९।।

याद कर के चेहरा वह
मुस्कराहट से भरा,
मोद अनहद को हूँ लेता
प्यार झर झर से झरा।५०।।
(नोट् हूँ को गीत में हुँ पढ़ा जायेगा)

(३)

बालिका अब बालपन को
छोड़ कर इतरा रही ।
बन्द करके सब खिलौने
घूंघटें लटका रही ।।५१।।
हा! न पाकर के खिलौने,
फर्श पर बिखरे हुए,
सोचता हूँ रंग उनके,
अजब थे निखरे हुए ।।५२।।

(४)

ओ! खिलौने वो सुहाने
जो न अब मुझ को नसीब ।
छिप गए वो मुस्कराने
स्वर्ग था जब अन करीब ५३।

मां का प्रेम अपार

दाँत आये जब नये थे
काट मैंने स्तन दिये ।
दुखित होकर भी न रोका
दूध; मुख में फिर दिये ।५४।
शीत में जब बिस्तरे में
मूत्र मैंने थे किये,
ठिठुर कर तुमने गुजारे,
सहन वह दिन भी किये ।५५।।
याद आये दुखद वे दिन,
प्रेम वात्सल से भरे ।
हृदय ने दे दी गवाही
आँख ने आँसू झरे ।।५६।।
सरकता घुटनों चला जब
अंगुली दी हाथ में ।
कदम मेरे लड़खड़ाते
तू चली थी साथ में ।।५७।।
धूल से लिपटे हुए मुझ
को उठाया गोद में
मैं न रोऊँ एक छिन भी
गाल चूमा मोद में ।।५८।।
देखती थी ध्यान से तू
शक्ल मेरी को कभी ।
शक्ल में तब ढूंढती थी
शक्ल अपनी ही सभी ।।५९।।
गाल मेरी अंगुलियों से
तू छुआ मुझ को हँसा,
आप हँसती देख डिम्पल
गाल अन्दर को धँसा ।।६०।।

फिर उठा कर हाथ दो से
दे लारा सा ज़रा
साथ छाती से लगाती
स्कन्ध पर सिर को धरा।।६१

हाथ फेरे शीश मेरे
एक दो नाँ बार-बार
कौन तेरा समझ पाया
जगत् में माँ प्रेम प्यार ।।६२।।

रो रहा होता कभी जब
नींद लेता था नहीं ।
थपकियाँ दे दे सुलाती
लोरियाँ सुनता नहीं ।।६३।।

डाल झूले में तभी तू
आप देती झूल थी ।
या कि गोदी में उठा कर
खुद फिराती 'फूल थी' ।६४।।

क्या पता वे आ ही जायें ?
और मन सिहरा ही जाँयें ।
तन जला कर राख कर दूँ,
धूम्र उठ कर स्वर्ग जाये ।
क्या पता तव राम बरसें ?
आग तन की को बुझायें? ।६५।

तन जला कर भस्म कर दूँ,
भस्म की ले मसि बनाऊँ ।
राम के लिख नाम खत को
तुरत मैं नाँ क्यों पठाऊँ ।।६६
क्या पता वे आ ही जावें
और मन सिहरा ही जावें ।।

वायला का प्रलाप

(बारहवीं रात का गान)

चाँदनी की रात में
एकली बैठी हुई
सोचती थी वायला,
आदमी का भेष ये
दुःख का कारण बना ।
हृदय मेरा चाहता
औसिनो, तुझ से, प्रणय ।
जान ले रे औसिनो
कौन हूँ सीज़ारियो ।
जान ले पहिचान ले,
वायला हूँ वायला ।
नारियों के भेष में ।
"नर नहीं हूँ" समझ रे
प्रेम कर, मुझ से, अरे ।।६७।।

चाँदनी की रात में
एकली बैठी हुई
सोचती है वायला,
भेष मेरा मनुज का

दु:ख का कारण बना।
भामिनी ओलीविया
प्रेम करती है मुझे
पर नहीं है जानती
कौन है सीज़ारियो?

युवक मुझ को समझ कर,
प्रेम मुझ से मत करो,
कामिनी हूँ, कामिनी,
भूल मत, ओलीविया ।।६८।।

चाँदनी की रात में,
एकली बैठी हुई
सोचती है वायला,
भेष परिवर्तन, हरे !
वञ्चना को क्यों करे?
जो मुझे है चाहती,
मैं उसे नाँ चाहती।
मैं उसे हूँ चाहती।
जो मुझे नहिं जानता,
अन्य पीछे भागता।
नर नहीं हूँ, औसिनो
नार हूँ मैं वायला।
काश ओ ! तू जान ले
दार हूँ पहिचान ले! ६९।।

चाँदनी की रात में
एकली बैठी हुई,
सोचती है, वायला,
नारियों के हृदय हा!
मोम पिघली नरम-से,
प्रेम की हलकी लगी
आँच कुछ कुछ गरम से।
पिघलते हैं एक दम
मानवी सौन्दर्य की
शीघ्र लेते छाप को।
झट पिघलते एक दम
प्रेम की लग भाप से ।।७०।।

आह मत भर सुन्दरी
सूख जायेगा हृदय।
क्यों हुआ वह दिन उदय
दारिका होते हुए
वेष नर का पहिन कर
जब बनी सीजारियो! ।।७१

वात सुन ओलीविया
नार से परिणय न कर
वर चुनो री मनुजमय।
वायला असमर्थ है,
किस तरह तुझ से कहे,
खोल कर अपना हृदय
"हूँ न मैं सीज़रियो।

प्रणय का ना पात्र हूँ।
हठ न कर ओलीविया।"
यदि कभी पाऊँ समय
तो सुनाऊँ क्या घटा।
दे गई जो नर-छटा।।७२।।
भाग्य! तू अब जिगर को,
ले चला है किधर को,
दिल जला, दे फिकर को,
क्या करूं मैं जिकर को।।७३

सत्य क्या है

कवि वही जो सत्य समझे,
कवि वही जो प्रेम उलझे
उलझनों से सुलझ कह दे,
प्रेम का है सत्य ये।।

श्याम तरंग

बाल लीलायें--

(१) बाल गोपाल नर्तन--

ताल दै दै कृष्ण नाचैं,
नन्द रानी हृदय राँचै।
मधुर मृदु हैं बोल प्यारे,
तालियों के गान में।।१।।
नूपुरों की धुनि सुरीली
नन्दरानी मन सुनन्दित।
नन्दराजा भी अनन्दित।
पायलों की झान में।।२।।
कूजतीं कटि किंकणी हैं
टापती जब एड़ियाँ,
दाब देती ले हुलारा
एडियों की पेडियाँ,
आ रही हैं छन छनाती
राधिका के कान में।।३।।
माखनी मुँह पर थुपी है,
साँवरे गोपाल के।
नाक पर भी होंठ पर भी
और सारे गाल पै।।४।।
आँगने में यशुमती के
बालकों का गोल है,
कान्ह हीरा गोल का है,
हृदय-हर अनमोल है।।५।।
साथ नचतीं, कान्ह बलुआ
गोप बाला-बालिका।
चाँद काला श्याम है तो
गौर रजनी राधिका!
राधिका सर्वस लुटाती
श्याम वंशी तान में।।६।।

(२) कृष्ण बाल के भोले वचन–

बाल बढ़ते हैं न मेरे,
कब बढ़ेंगे किस तरह?
शीश की चुटिया न बढ़ती,
माँ बढ़ेगी किस तरह? ।।७।।

"देर कर मत, दूध पी, मन
दूध करता तुष्ट है ।
शिर-शिखा भी है बढ़ाता,
काय करता पुष्ट है ।"८।।

"दूध पीते बरस गुजरे
माँ नि मेरे तीन हैं,
पर शिखा तो भी बढ़ी नहिं
दाऊ से भी छीन है ।।९।।

"गौर तेरा वर्ण माये
कृष्ण मेरी गात है,
गौर का बेटा हुवा क्यों
श्याम, यह क्या बात है? ।।१०

"गोप यों यों कह चिढ़ाते
तालियाँ दे दे बजा,
हास हँसिया कर मज़ाकें
खिल्लियाँ लेते मजा ।।११।।

"हर गवाला कान्ह काला
कह मुझे है छेड़ता,
नाच नचता, रार रचता
गूँठ दिखला तेड़ता ।।१२।।

"गोप मेरे जिस्म पर फिर
अंगुली हैं फेरते,
ये न उतरेगी है कालिश
बहुत गहरी, टेरते ।।१३।।

"शर्म से हूँ डूब जाता,
गोपियाँ ब्रजरानियाँ,
भी दिखाती चेहरों पर,
जब चढ़ी हैरानियाँ ।

मुख बनाती बहुत सारे
आँख करती काणियाँ।।१४।।

"माँ नि मेरी क्यों न करती
तू न कोई है इलाज ?
क्या न तेरा बाल हूँ मैं,
क्यों तुम्हें नाँ कोई लाज ? ।।१

मां का उत्तर––

"गोप सारे बाल प्यारे,
हैं चँवाई, हैं गंवार ।
गाय लाई हूँ, मैं धौली
खोल मुख दूँ डाल धार।।१६।

"जान मेरे, जान तेरी
पुत्र मुझ को प्रिय अपार
ऐ हठीले खेल लीला
पापियों से विश्व तार ।।"१७

गोप कृष्ण जी को कहते हैं--

"रङ्ग गोरा नन्द जी का
औ' यशोदा गौर हैं,
गौर दोनों माँ पिता तो
क्यों तु कालाभौंर है ? १८।।

"मोल लाई है तुझे या
तू पड़ा पाया कहीं ?
खीझती तुझको इसी से,
पेट का जाया नहीं ।।१९।।

"माँ न असली कोई ऐसी
जगत में देखी गई
बाल होवे भूख पीड़ित
खाय खुद चटनी दही ।।२०।।

"भूख जब तुम को सताती
चोरियाँ करते हो तब
माखन घर घर चुराते
क्या पता हम को न सब।।२१

"पूत अपने को न भूखा
माँ कभी रखती कहीं
और सुन, घर में रहे तू
ये उसे भाता नहीं ।।२२।।

"पास रख कर दाऊ अपना
भेजती तुम को बने,
गौ चराने को अरे रे! !
शेर चीते जँह घने ।"२३।।

कृष्ण कहते हैं-मां को

"जाऊँगा री लोट धरती
पर अभी मैं जसुमती ।
आऊँगा न गोद तेरी
मैं कभी भी जसुमती ।।२४।।

'लाल' बाबा नन्द का तो,
मैं बनूँगा जसुमती
पर न तेरा सुत कहाऊँ-
गा कभी मैं जसुमती ।।"२५।

"दूध पी पी कर थका हूँ
पर न बढ़ती शिरशिखा,
क्यों कहा था ये बढ़ेगी,
दूध पीने से दिखा ।।"२६।।

कृष्ण का रूप वर्णन

मोर मुकुटी चन्द्रिकायें
नन्दनन्दन के शिखर ।
राजतीं यों अकस सौ हों
चाँद के आये उतर ।।२७।।

एक सूखा वृक्ष जल कर
है जलाता सकल वन ।
एक उलटा पुत्र कुल का,
है लुटाता सकल धन ।।२८।।

एक सच्चा पुत्र कुल का

मारता है कंस को
और करता चेदिराजा–
राज के कुलध्वंस को ।।२९।।

गीत गीता के है गाता,
वंश का अवतंस है
नाम वसु का, देवकी का
ख्यात करता वंश है ।।३०।।

शीश शिव पर राजती है
क्या हि सुन्दर शशिकला ?
नन्दनन्दन का मुकुट भी
देख तू कैसा भला
चन्द्रिकायें मोर पंखों
की सजी हैं सैकड़ों
राज ते शशि-भाल दोनों
पर फरक है देख एक
चन्द्र शिव पर एक ही है,
जब यहाँ पर हैं अनेक।।३१।।

पीत ओढ़े वसन सुन्दर
काँछनी बाँधे कमर ।
हाथ रखकर बाँसुरी पर
माल गल में डालकर
मोर पंखी से सजा कर
मुकुट सिर पर पहिन कर
मन बसो मम ऐ बिहारी
वेश ऐसा धार कर ।।३२।।
बहुत अद्‌भुत श्याम मेरे,
जन सभी मोहित हुए
चित्त अन्दर बसत भी जो
जगत में बिम्बित हुए ।।३३।।

राधिका वर्णनः--

चतुर नागर प्रेम सागर
राधिका अभिराम हैं ।
गौर तन की झलक उनकी
हरित करती श्याम हैं ।।३४
राधिके तव गौर द्युति से
श्याम तन होगा हरा ।
दुःख जग के दूर होंगे
पुण्य भागी हो धरा ।।३५।।

राधा कृष्ण की जोड़ी का वर्णन--

छोड़ दे ओ तीर्थ सारे
राधिका सँग प्रेम पाग ।
संग हरि यदि राधिका हों,
मार्ग बनते सब प्रयाग ।।३६।।
गौर वर्णी राधिका हैं,
नीलवर्णी श्याम हैं ।
देश व्रज में जगमगाते,
नगर औ' सब ग्राम हैं ।।३७।।
स्नेह से आसक्त जोड़ी

युग युगों तक युत रहे।
इत न कम वृष भानुजा तो
वीर हलधर उत रहे।।३८।।

युगल चलता गौर नीला
राग रँग में पाग पाग।
गङ्ग मानो मिल यमुन से
मार्ग बन जाते प्रयाग।।३९।

कुञ्ज वृज में कर विहारें
जाँयगे धुल पाप दाग।
पुण्य तुमको वे मिलेंगे,
जो न देते लाख याग।
सुभग तेरा भाग वाला,
दिल खिलेगा बाग बाग।।४०।

वयस् तन मन वर्ण सब में
एक से जो नित रँगे।
जुगल राधाकृष्ण जी में
जुगल लोचन हों लगे।।४१

गोवर्द्धन धारण

प्रलय करने को बरसतीं
जलधरें जुड़ एक साथ।
गर्व तोड़ा सुरपती का
गिरि धरा जब एक हाथ।।
कोप करके इन्द्र ने की
प्रलय की वर्षा अकाल।
देर नाँ हरि ने लगाई,
गिरि धरा बाहू विशाल
गर्व टूटा इन्द्र का लो,
सब बचा गोपाल बाल।।४३

राधिका को देखते ही,
श्याम का डग डगमगात
बालिका व्रज की डरीं कि
गिरि गिरा अब प्रलय वात।।

कृष्ण के भक्तों के लिये
कृष्ण हरि रूप में:--

विरद अब नाँ रह सकेगा,
देख लेना हे मुरार।
पड़ गया पाला उसी से
पापियों का जो पहार।।४५।

निज विरद पर मत लगाओ
शर्म को या लाज को।
क्या कहेंगे जन, 'डुबावन
हार हैं।' यदुराज को।।४६।।

मन अरे तू छोड़ देवी
देवते, भज राम को।
कुञ्ज वीथिन में विचरते
धर हृदय घनश्याम को।।४७।।

यदि सुचिन्तन चित्त में यदु-
राज का करते नहीं।

तो भला क्यों प्राप्त होंगी ?
शान्तियाँ मन में कहीं ।।४८।।
मैं करूंगा कुटिलतायें
ता कि हो नाँ सरल हिय,
सरल हिय में क्या त्रिभंगी
बस सकेंगे हृदय प्रिय ।।४६।।
कुटिलता-कर कर करूँगा,
हृदय अपना उस तरह ।
ताकि प्यारे ऐ त्रिभंगी
बस सको तुम जिस तरह ।५०।
पैर टेढ़े कुटि च टेढ़ी
और टेढ़ी बीन ले ।
आवगे जब तुम त्रिभंगी
वक्रतायें तीन ले ।।५१।।
क्यों समाओगे सरल हिय
कुटिलतामय रूप में?
सो हिया मैं भी करूंगा
कुटिलतम अनुरूप में ।।५२।।
भक्ति में नाँ भक्त समझे
हृदय को खोते गये ।
श्याम रंग में डूब कर के
ऊजले होते गये ।।५३।।
भक्ति करते भक्ति करते
समय को खोते गये ।
कृष्ण काले से रंगे भी
ऊजले होते गये ।।५४।।

बृजवासियों के विचार
कृष्ण के प्रति

जोड़ ले तू लाख चाहे
पर न तेरी है गति ।
सम्पदा मेरी सदा तो
विपद भञ्जन यदुपति ।।५५।।
पाप आगों से तपा ये
हृदय मेरा है हमाम ।
शरत् रुत में आ कभी तो
स्नान करना सुखद श्याम।५६।
धन्य धन वृज वासियों के
और धन जिनका नहीं ।
प्रेम रुचि जिनकी है उनमें
और कुछ रुचता नहीं ।।५७।।

कृष्ण भ्रमर के रूप में

क्यों करें उनका विसाह?
वचन मुख में और उन के,
हृदय में कुछ और है ।
भेजते हैं पत्र झूठे
बेरुखी सा तौर है ।
श्याम बसते मधुपुरी में
भूल कर लेते न राह ।

क्यों करें उनका विसाह !

चूस लेता मधु रसों को
फूल के जब है भँवर

पूछता नहिं बात आकर,
फिर न लेता है खबर ।

बे वफा होते हैं सारे
देह जिनके हैं सियाह ।
क्यों करें उनका विसाह?

बाल पिक की पालना कर
काक करता है बड़ा ।

रुत बसन्ती आई ज्यूँ ही
कूकता वह चल पड़ा ।

क्या करेंगे प्रेम काले
तड़फ देंगे या कि दाह!
जो कि बाहर से हैं काले

क्या न अन्दर से सियाह? ५८।।

कृष्ण को भ्रमर के नाम से सम्बोधित किया है ।

हे ! भ्रमर तुम तो किसी से
प्रेम करते हो नहीं ।
फूल का रस चूस उस को

छोड़ जाते हो वहीं ।।५९।।
कान्ह ने जो चाल पकड़ी

क्या तुम्हीं से सीखली ।

या कि तुमने ही कन्हाई

से कहो क्या भीख ली ।।६०।।
कृष्ण सा काला वदन है

क्यों तुम्हारा ये कहो?
कृष्ण सा काला तुम्हारा,

काम क्या इस से अहो! ! ६१

गोपियां उद्धव से कहती हैं

दो न शिक्षा कोई हम को

छोड़ने की प्रेम को ।
यदि सखे तुम चाहते हो

गोपियों के क्षेम को ।।६२।।
तुरत जा मथुरापुरी को

कृष्ण से कह दो यही ।
जो दशा देखी हमारी

सो सुनादो तुम सही ।।६३।।
ऊद्धव सुनो तुम वचन सीधे

गोपियों के ध्यान कर,
हृदय में हम हैं छिपाती

कोप को तव मान कर ।।६४

कृष्ण से यह प्रश्न करना:--

प्रेम जो हम से किया था

क्यों निभाया नाँ उसे?
कुब्ज दारा सौत-सी से

जा लगाया क्यों उसे? ६५।।

प्रेम करना बालपन से
जो सिखाया था हमें,
क्या न गहरा था प्रणय वह
या कि उथला थाह में ।।६६।

साथ छोड़ा क्यों हमारा
प्रेम की इस राह में?
क्यों बताओ हो पड़े तुम
जा के कुब्जा बाँह में ।।६७।।

भेजते हो भौंर किस को
दिल हमारे चोर कर?
त्याग के उपदेश दे जो
हाय ! भूँ भूँ शोर कर ।।
क्या मिलेगा रे भ्रमर ओ!
दिल हमारे तोर कर? ६८।।

भ्रमर! कारे, मन हमारे,
हैं नहीं दस बीस तीस ।
चूसलीं सुमनें चमन की
सब खिलीं तेरी न रीस ।
क्यों न आते हो कन्हाई,
चाहते अब क्या हो सीस?
जुगति कर दो हरि हमारे
लौट आवें प्राण-ईस ।६९।।

जानती हैं हम कि कान्हा
है खुशामद में चतुर ।
आज ऊधो दूत बन कर
आगये हो तुम इधर ।
क्या उसी से सीख आये,
चाटुता का हो सबक ।
जो कि तुम हम को सुनाते
ही हो जाते बेधड़क ।
मानिनी हम जानती हैं,
जो किये उसने विनय,
भेज देना देख लेंगी
आयगा जब प्रेम मय ।।७०।।

गोपियों के भाव श्याम के प्रतिः–

(१) वंशी पर मदमातीः––

काननों से धुन सुनी थी
मुरलिका की तान की ।
और कुछ सुनती न अब है ।
धुन सुनन की बान ली ।
रात दिन कानन लगा कर
काननों की ओर को
है बिताती समय अपना,
सुन न सकती शोर को ।।७१।

(२) प्रेम विकल गोपिकाः––

देखते ही कान्त अपना
रोम हर्षित होगई ।
इधर से गई उधर को तो

उधर से आई इधर ।
चैन इक छिन भी पड़ी नाँ
प्रेम विह्वल हो गई ।।७२।।

(३) कामिनि गोपिका

साँवला सा जिस्म जिनका
कौन आते हैं यहाँ ।
थर थराती देह मेरी ।
देख डर लगता महाँ ।
सखि, न डर, ये काम कम्पन
प्रेम की है थरथरी ।
भय इसे न पुकार सखि नी
लाज की मारी मरी ।।७३।।

(४) स्थान स्मरण

जिन जिन जगह पर, सुभग सुन्दर
श्याम ठहरे थे कभी ।
उन उन जगह पर नज़र ठहरा
याद करती हूँ सभी ।।७४।।

(५) स्थानों पर श्याम स्मरण

जिस जगह पर श्याम सुन्दर
थे कभी ठहरे कहीं ।
जब कभी पड़ती नज़र तो,
याद आते हैं वहीं ।
देख लेती हूँ उन्हें फिर
भल सकती हूँ नहीं ।
इस तरह दर्शन-सुखों को
ले रही अब भी यहीं ।।७५।।

पाठान्तर--
जिस जगह पर प्रिय सखी नी
श्याम देखे थे कभी
ठौर भी उन श्याम के बिन
रोकते दृग् जब तभी ।।

(६) स्पर्श से प्रिय का ज्ञान

अख मिचौनी श्याम ने की;
परस से प्रिय जान कर,
बाँह उलटा कौल भरली ।
हाथ से पहिचान कर ।।७६

(७) यमुना की याद

सघन कुञ्जें सुखदछाया
मन्द शीतल सुख समीर
याद मेरी खींच लेते;
पावनी यमुना के तीर ।।७७

पाठान्तर--
सघन कुञ्जें सुखद छायें
मन्दगति शीतल समीर ।
आज भी हैं खींचते मन,
वे मनोरम यमुन तीर ।।

(८) उद्दीप्त कामा गोपिका

कान्ह के गल से लटकती,

वन-कुसुम की माल थी ।
हृदय सुमनों में गुंथी वह
प्रेम की रखवाल थी ।।
एक गोपी लेट गइ थी
सेज पर आ बेखबर
फूल कोमल माल के वे
रगड़ खा गै देह पर ।
छट पटाई तलमलाई
मीन सी वह हो गई ।
तप्त मदनी पीर पाकर
दीन सी वह हो गई ।
चन्दनों के लेप कर कर
धूल-सी मैली हुई ।
चैन आई भी न तो भी
आग थी फैली हुई ।।७८।।

(९) बातों की ठरकी गोपिका

बातरस की लालचिन ने,
बाँसुरी रख दी कहीं ।
सौंह खाती, भौंह चढ़ाती,
वापिसी करती नहीं ।।७९।।

(१०) अतृप्ता गोपिकाः—

सखि, सलोना रूप कान्हा,
आँख कितना भी, पिये ।
पर अघाती ही नहीं है,
प्यास दर्शन की, पिये ।।८०।।

(११) पवनोद्दीप्ता

पवन दक्षिण से बहा जब,
पीन लेकर के नितम्ब ।
चूचकें उचका उरस् पर
छीन लेकर के कटी ।
रुन झुनाते चरण दोनों
नूपुरों से हैं बंधे ।
लाल कमलों से विमल पद
लाल मँहदी से रँगे ।
जघन तरुणी सघन चिकने
कदलियों-के-से लिये ।
रसिक मोहन साथ लेकर ।
काननों की ओर नी, अलि ।
सघन वन से भय न तन का
कर, कहाँ पर है चली ? ८१।।

(१२) विरह से सताई गोपी

हाय, कान्हा क्या किसी से
प्रेम करते हो कहीं ?
तन हुए हैं राख जल जल
आह कुछ बाकी रहीं! ।८०।।

नीति तरंग

दान देना बहुत अच्छा
कार्य है, पर यह बता
दान देने वक्त क्या तू
सोचता भी है कभी ?
दान जिसको दे रहा है,
हक उसे क्या दान लेने
का मिला भी है कभी ?
दानियों के ताज प्यारे
दान दे तू बार बार,
पर न हो हकदार तो फिर
तू न देना एक बार ॥१॥

सर्व जन की उन्नति में
दो लगा दिन रात को ।
एक धुन से धर्म सेवा
को करो प्रति प्रात को ।
एषणायें छोड़ कर तुम
उच्च होवो आश्रमी ।
वृद्ध हो संन्यास लेकर
विदित हो विज्ञात हो ।
आर्य जन कल्याण में कर
सर्व हित की बात को ।
वेद का सन्देश देते
देश और विदेश में ।
भार भू हलका करो कुछ,
तुच्छ समझो गात को ।
भ्रात मानो जगत भर के
सब दुखी नरव्रात को ।
वस्त्र पहिनो गेरुए तब
तज पिता औ मात को ॥२॥

दीप-सी गति कुल कुपूतों
की सदा सोचो विचार ।
दीप-बाती बाल दो यदि
औ कुपूती बाल हो यदि ।
रोशनी करते अपार ।
ये बढ़ें या वो बढ़ें तो
गाढ़ करते अन्धकार ॥३॥

जल कणों से कलश भर लो
धन कणों से कोष को ।
शब्द कण से ज्ञान पा लो ।
ज्ञानियों में मान लो ॥४॥

वंश वेणु ध्वंस होते
वन्हि से वन दग्ध हो ।
जो अधर्मी पुत्र उन से
अग्नि ही की ही तरह ।

वंश कुल हैं ध्वंस होते
नष्ट सब सन्तान हो ।।५।।
सखि जहाँ ये गुण न होवें,
व्यर्थ बसना है वहाँ,
भय न होवे पाप का कुछ
लाज जग की भी न हो ।
आपिसी दाक्षिण्य वाला
त्याग वर्तन भी न हो ।
तो वहाँ तू वास कर मत,
साथ उन के मत रहो ।।६।।
तीर तटिनी वृक्ष जो हैं,
भामिनी पर गेह में,
भूप वञ्चित मन्त्रणा से
शीघ्र होते नष्ट हैं ।।७।।
विप्र लेकर दक्षिणाको
त्यागते यजमान को
शिष्य लेकर ज्ञान अपना
त्यागते विद्वान को ।।
छोड़ते मृग उन वनों को
जल हुए जो राख हैं ।
त्यागना संसार का बस
इस तरह से चल रहा ।।८।।
मैल यदि नहिं चाहते तुम
मित्रता के चित्र पर,
धूल मत अभिमान की तब
तुम उछालो मित्र पर,
नेह वाले स्नेह से यदि
वह पुतेगा चित्र तो
क्या चमकता नहिं रहेगा
स्नेहवाला मित्र तो ?९।।
जो बुराई कर रहे हैं,
मान उनके हो रहे ।
ग्रह भले नहि दान लेते,
दुष्ट जप भी ले रहे ।।१०।।
नमित होते केश सज्जन
आप जन्म स्वभाव से ।
नीच कुच पर अकड़ते हैं
वैभवीय प्रभाव से ।।११।।
चाम चूहे से दमामा
ज्यों मढ़ा जाता नहीं,
काम छोटों से बड़ों का
त्यों कढ़ा जाता नहीं ।।१२।।
जतन कर लो बरु करोड़ों,
प्रकृति रहती है वही ।
जल नलों के बल चढ़ाया
पर गिरा फिर भी वहीं ।१३।
अग्नि से संतप्त होकर
पक्व हो जाता है घट ।

पक गया जो घट नहीं फिर
चाक पर चढ़ता कभी ।।१४।।
पुण्य है नाँ स्वार्थ जिसमें
व्यर्थ श्रम वह है विहग ।
बाज बन न शिकार कर तू
दूसरे के हाथ लग ।।१५।।
नीर नल का नींव होता
तो वही चढ़ता है फिर ।
नम्र हो चलता है नर जो
उच्च हो बनता है शिर ।१६।।
प्रकृति को अपनी नहीं हैं
छोड़ते उत्तम कभी ।
यदपि कितना संग उनका
जा करें दुर्जन सभी ।।
चन्दना क्या छोड़ देता
शीतता अपनी कभी ।
भुजग चाहे लाख लिपटें
शाख पर आकर सभी ।।१७।।
संग मूरख मत करो, नहिं
लोह जल सँग तैरता ।
संग खल जन का करो मत
प्रीत में भी वैरता ।।१८।।
तालियाँ दे दे हँसाई
हो रही है गाँव में ।
गर्व गुण-नागर करे क्यों
इस गँवारु ठाँव में ।।१९।।
बे अकल को मिल सके जो
वो अकल होती नहीं ।
खुशबू कपूरों से कभी भी
हींग को मिलती नहीं ।।२०।।
वित्त खोने पर किया ज्यों
चित्त में सन्तोष को,
वित्त पाते वक्त करते
प्राप्त होते मोक्ष को ।।२१।।
कुसुम के नाँ दिन रहे वे,
नाँ रही अब वो बहार ।
बस गुलाबों में बची हैं ।
खार वाली अपत डार ।२२।
कनक कहने से न गहना
है घड़ा जाता कहीं ।
कनक कहने से धतूरा
क्या बना सोना कहीं ।।२३।।
गेंद खा खा चोट माथे,
ज्यों उचकती और और ।
नीच पापी पा निरादर
त्यों उचकता और और ।।२४।।
प्रीत उनकी जो बराबर,
सेवकाई भूप की ।

योषिता शृंगार घर की,
वणिकता व्यापार की ।।२५।।

भ्रष्ट जिनका आचरण हो,
कुटिल जिनकी दृष्टियाँ ।
दुरित में हो वास जिनका
प्रीत उन से मत करो ।
दुर्जनों से प्रीत करना
शीघ्र बनती मौत है ।।२६।।
पैर रखना देख कर,
पान करना छान कर ।
शास्त्र पढ़ना ध्यान धर
वचन देना सोच कर ।।२७।।
देश जिस में मान हो नहिं
नाँहि होवे जीविका ।
बन्धु जन भी पास हों नहिं
नाँहि हों विद्यागमें ।
तो रहो उस देश में मत.
चाणकी यह नीति है ।।२८।।
धन बचाओ आपदों में
काम आवेगा बहुत ।
पत्नि को यदि हो बचाना
तो धनों को फैंक दो ।
पत्नि धन दोनों लगादो
आत्म रक्षा के लिए ।

सूक्ति यह वर्णित हुई है
नीति में चाणक्य की ।
'कवि' नहीं पर मानता यह
समझ उसकी दूसरी ।
स्वार्थ हित पत्नी कभी भी,
वह लगावेगा नहीं ।
पत्नि हित वह जान देगा
आत्म रक्षा हो न हो ।
वह युधिष्ठिर क्यों बनेगा?
दाँव पर रख द्रौपदी ।
दूर नहिं अपवाद होना,
बीत जायें लख सदी ।।२९।।
मान का यदि भङ्ग हो तो
प्राण बेशक छोड़ दो ।
छोड़ने में प्राण के तो
दुःख होगा एक दिन ।
टूटने में मान के तो
कष्ट है हरएक दिन ।।३०।।
पुस्तकों में ज्ञान कितना,
पर न तेरे काम का ।
पर घरों में द्रव्य कितना
पर न तेरे काम का ।
समझ कर तू याद कर ले,

ज्ञान को अपना बना ।
पौरुषों से बुद्धि श्रम से
द्रव्य तू अपना कमा ।
सुख सदा बरसायेंगे ये
शक नहीं हर वक्त पर ।
हाँ, सदा हर वक्त पर ये
सख्त से भी सख्त पर ।।३१।।
लेप चन्दन के लगाकर
केवड़ों से स्नान कर ।
चाह यदि होऊं सुवासित
स्वेद मल मल दूर कर ।
लेप चन्दन कर न सकते
दूर तेरी दुरित बू ।।
स्नान कर ले ज्ञान जल से
मुक्त हो भवबन्ध से ।
दान से द्वय कर सजा ले,
स्वर्ण कंकण से नहीं ।
खान से मिटती नहीं रे
मान की जो भूख है ।
मान की अपनी मिटालो
भूख भारी हे प्रिये !
मान पूर्वक आन रख कर
शान से जीवन बिता
प्रार्थना कर श्री प्रभू से
जो कि सबके हैं पिता ।।३२।।
साँप का विष दाँत में तो
बिच्छुओं का पूंछ में ।
श्वान का विष लार में तो
मच्छरों का मूंछ में ।
सोचता क्या तू सखे कि
दुर्जनों का है कहाँ ?
देह का न अंग कोई,
विष न जिस में है वहाँ? ।।३३
अगर राजन् भूमि गौ को
दोहना हो चाहते ।
वत्स सा पालो प्रजा को
लगन से लग रात दिन ।
तो तुम्हें इन भूमियों से
प्राप्त होंगे फल अ-गिन ।।३४
विश्व में विश्वास राजा
राज करता आज है ।
वञ्चना ने देख यह, सिर
पर सजाया ताज है ।
दिन दहाड़े हुक्म इसका
हर जगह पर जब चला ।
इन्द्र कवि तब देख रोया
हाय तुम को क्यों खला ।।३५।
वञ्चना रानी बनी वि-

श्वास का जब राज था।
लूटना ठगना सभी को
एक बस तब काज था ॥
माँगता विश्वास को जो
पात्र उसका वह नहीं
पात्र जो विश्वास का है,
माँगता ही है नहीं ॥३६॥
पूज्य बनते गुण सदा हैं,
सम्पदा बनती नहीं।
पूनिमा का चाँद सुन्दर।
पूजता कोई नहीं।
दूज के को पूजते सब
ईद को जा पूछ लो ॥३७॥
क्यों ढिंढोरा पीटते हो
शोर गुल कर शहर में।
गुम-शुदह बेटा तुम्हारी
काँख में है सो रहा।
आँख खोलो देखलो वह
जाग कर तुतला रहा,
गुम हुआ बेटा नहीं गर
तो कहो ये कौन है ? ॥३८॥
बाँधलो यदि रत्न को सखि,
पैर के बिछुओं में तुम
तो नहीं वह रत्न रोता,
नाँहि है वह सोहता,
रत्न बिछुओं में जड़ा वह
जो भि जन है देखता।
एक स्वर से कर पुकारें
एक दम है पूछता,
कौन वह किसने जड़ी है
काँसियों में यह मणि?
इस तरह पर सकल जग तब।
है उसी को कोसता।
मूर्ख जिसने वह जड़ी मणि
बहुत ही मन मोंसता।
जग उसी के चेहरे पर
अपयशों को थोपता,
और दे धिक्कार उस को
दोष सब आरोपता ॥३६॥
दान सारे क्षीण होते
जो कभी तुमने दिये।
यज्ञ कर या होम करके
जगत में मेरी प्रिये।
अभय का है दान बस इक
क्षीण जो होता नहीं,
यदि दिया है सोच करके
पात्र में तुमने कहीं ? ॥४०॥
मूर्खतावश जो समझता
भामिनी अनुरक्त है।

ओह ! मुझ में काम-प्रेरित
पूर्णतः आसक्त है ।
चँगुल फँसा उसके हुवा वह
नाचता है इस तरह
नाचती गुड़िया है जैसे
या कि पुतली जिस तरह।४१।

दो करें यदि राज तो फिर
दुखद होता राज वह
चाँद रवि का मेल होवे
तो अमा का तम असह ।४२।

बिन विचारे जो करेगा,
बाद में पछितायेगा ।
काम बिगड़ेगा उसी का
चैन को नाँ पायगा ।
जगत में होगी हँसाई ।
जग न उसको भायगा ।
काम बिगड़ा हर समय ही
चित्त में खटकायगा ।।४३।।

सलिल सम्पद जब बढ़े तो
मन कमल बढ़ते तदा ।
जल घटे पर सूखते हैं,
पर घटे नाँ हैं कदा ।।४४।।

गाँठ में पैसा अगर है,
मित्र तब तेरे सभी ।
संग तेरे वे फिरेंगे
साथ छोड़ेंगे न भी ।
पास पैसा नहिं रहेगा
तब न होंगे साथ वे ।
बात हमसे मत करो तुम,
दूर हो, कह हाथ से ।
स्वार्थ का है जगत सारा
बे-गरज कोई नहीं ।
मतलबी व्यवहार सारा
चाल दुनियाँ में यही ।।४५।।

काम पड़ने पर न आया
पास कोई है कभी
काम नीचा भी हैं करते
वक्त आने पर सभी ।
डोम घर जाकर बिका रे
अवनि पति हरिचन्द भी
करता रहा अपना गुजारा
कर रसोई भीम भी ।
पाण्डु नन्दन विश्व विजयी

जब मुसीबत से घिरा,
छोड़कर गाण्डीव को भी
डोलता बन बन फिरा ४६।।

दास आशा के बने जो
लोक के वे दास हैं।
आस दासी है जिन्हों की
लोग उनके दास हैं।।४७।।

न्याय्य मेरा प्राप्य है, बस
न्याय्य मेरा जाप्य है।
न्याय्य मेरा लक्ष्य है, बस
न्याय्य मेरा सख्य है।
न्याय्य मेरा ध्येय है, बस
न्याय्य मेरा गेय है।
न्याय्य को मैं त्राण दूंगा।
न्याय्य को मैं प्राण भी।
न्याय्य पर बलिदान दूंगा।
न्याय्य पर मैं आन भी।
न्याय्य से ही प्रीत होगी।
मैं जयूँ, या मैं हरूँ।
न्याय्य की ही जीत होगी
मैं जियूँ, या मैं मरूँ।४८।।

नव्य कोमल किसलयों की
कोपलें कलियाँ निकाल,
कट गये तरु भी पनपते
वक्त आता है यदा।
क्षीण चन्दा पूर्ण हो, क्या
नहिं छिटकते चाँदनी?
सोच करके सन्त जन यूँ
दुख न दिल भरते कहीं?
विपद सहते क्षीण होते
शोक पर करते नहीं।४९।।

लाठियों का गुण न भूलो
साथ अपने इक धरो।
आय कुत्ता काटने को
तो लगादो मत डरो।।५०।।

काम करना हो तुम्हें तो
शीघ्रता से वह करो।
काल पीजायेग वरना
सोच करके यह डरो।।५१।।

भूख पीड़ित हो चकोरा
पर न खाता और कुछ।
खायगा तो चाँद किरणें

या कि भुनगे आगके ।।५२।।

(कवि कल्पना पर आश्रित)

जोड़ना धन का बुरा नहिं
तन दुखी कर के न जोड़ ।
खर्च वाजिब कर बचे तो
जोड़ ले चाहे करोड ।५३।

(निम्न छन्द कुलाधारी है ।)

सुलगती आग, जलता जग
दिनों के फेर फिरने से ।
हुवा होता है सारा सूख
घटायें दुख की घिरने से ।५४।

श्वसुर घर का वास जानो
स्वर्ग उतरा हो धरा ।
पांच छे बस वासरों का
वास होवे यदि करा ।।
देर जितनी पर रहोगे,
नरक होगा घर वही ।
नर न नर भी रह सकेगा ।
हाँ बनेगा, खर वही ।।५५।।

गेह में यदि चार में से
एक भी होवे कहीं ।
हो नहीं सकता तु यूँ कि
मृत्यु पावे नर नहीं ।
मित्र शठ हो, दुष्ट भार्या
नौकरों को हो गरूर ।
सर्प का जँह वास होवे
मौत होती है जरूर ।।५६।।

परतियों से रंगरलियाँ
छिप सकीं नाँ ज्यों लसन ।
कत्ल छिप सकता नहीं है,
लाख हों चाहे यतन ।।५७।।

जतन कितने भी करो रे
प्रकृति पर फिरती नही ।
जल चढ़ाया नल सहारे
धार नीची ही रही ।।५८।।

कृपण की सम्पद बढे तो
सूमपन बढ़ता है और,
उरज में जब दूध आता
तो नहीं होता वठोर ।।५९।।

---o---

विविध तरंग

नरगिसें

एकला मैं घूमता था,
एक बादल की तरह।
उच्च पर्वत श्रृंखलाओं
घाटियों पर तैरते।
तब मुझे इक दम सुनहली
नरगिसों की क्यारियाँ।
दृष्टि-गोचर हो गईं थीं,
झील के तट पर लगीं।
पंक्तियाँ थी नरगिसों की
अन्त जिनका था नहीं।
मन्द मन्द बयार में थीं
फड़फड़ाती नाचतीं।
टिमटिमाती जिस तरह हैं,
वियति - गंगा तारिकें,
झिलमिलाती उस तरह थीं,
झील के तट नरगिसें।
श्रेणुमारें थी कतारें,
एक दम कितनी हजार,
झील का तट था सलोना
नरगिसों ही से भरा।

मस्तियों में मात उनको
कौन कर सकता कभी,
शिखर निज मँडरा रही थीं
नरगिसों की क्यारियाँ।
झुटपुटी आंखें मटकती
विमल कोमल कुड्मलें।
सस्मिता सी मद्रिका में
अधखिली थीं पुष्पिकें।
झूलती थीं झूमती थीं
लचकती थीं वृन्तकें,
हृदय हारी सुरभियों की
परिमलों से थी भरीं।
झील के सुन्दर तटों पर
लहलहाती नरगिसें,
नाचती थीं इस तरफ तो
लहरियाँ थी नाच करतीं
हृदय हारी उस तरफ।
नाच दोनों ही मनोरम
खींचते थे दिल सभी।
लहरियाँ सुन्दर परम, पर

अधिक सुन्दर नरगिसें।
"मोद-वर्द्धक कौन ज्यादह ?"
होड़ में बेजोड़ थीं।
देख उनके नाचने मैं
भूल अपने को गया।
लीन उनके ध्यान में, मैं
चित्र सा अविचल हुआ।
कौन आँके मूल्य कितना,
नरगिसों के दृश्य में।
मिल गया मुझको खजाना
नरगिसी - सौन्दर्य में।
लौट कर घर मञ्च पर जब
मौन मन हूँ लेटता।
सोचता हूँ आँख मूँदे,
बैठ कर एकान्त में।

साक्ष्य उनका एकदम कर
अन्तरात्मन् चक्षुएँ,
प्राप्त करती हैं अचानक
अनहदी आनन्द को।

प्रगट होती नरगिसों की,
सैन्य तब अक्षौहिणी।
जो कभी उन घाटियों में
बेखबर थी दिख पड़ी।
तब उन्हों के वे नजारे
दंग होता देखकर।
मोद में मद मस्त सा हो,
मोर मन हूँ नाचता।
हेम-मणियों के खज़ाने
श्री कुबेर धनेश ने,
पास रक्खे हैं हुए जो
उन सबों से भी अधिक,
कीमतें इन नरगिसों के
उन नज़ारों की प्रिये।
दान करते ये नज़ारे,
शान्ति के आल्हाद को,
कौन इस आल्हाद के है
आँक सकता मूल्य को ?
नरगिसी ये दृश्य क्या था ?
काव्य का आनन्द था।

आंख का ये विषय थे सो
आँख ने सुख पा लिया।
कान का नाँ वियय थे, सो
काव्य यह तो दृश्य था।

काव्य के आनन्द आगे
स्वर्ग का आनन्द क्या ?
काव्य के आनन्द आगे
तुच्छ सब आनन्द हैं।
ब्रह्म का आनन्द हो या

मोक्ष का आनन्द हो।
नरगिसी इस काव्य सम तो
हो नहीं सकते कभी।
ग्रन्थ कृति के पृष्ठ पर यह
काव्य का उल्लेख था।
यह कला क्या चित्र की थी
जो कि विधि ने खुद लिखी!
नरगिसी आनन्द, कवि को
अद्वितीय अखण्ड था।

---o---

गान कैसा था मनोहर ?

फ़सल हाड़ी पक गई थी,
ले दराँती हाथ में,
युव-कुमारी पर्वतों की
गान गाती, मस्त थी ॥१॥
ठहर जाओ ऐ पथिक तुम
और आगे मत बढ़ो,
गान उसका भंग होगा
विघ्न यदि कोई हुआ ॥२॥
पाँव को आगे बढ़ाना,
शान्ति-पूर्वक मौन से,
हों न जावें, आहटें जो
ध्यान को तोड़ें कहीं ॥३॥
काटती वह एकली है
साथ कोई है नहीं।
काट करके बाँधती है
पूलियों की गठ्ठियाँ ॥४॥
करुण रस से पूर्ण अनुपम
शोक का यह गान क्या ?
भर रहा निज गूंज से है,
पर्वतों की कोख को,
कुक्षियाँ जब भर गईं तो,
शेष धुनि उपर उठी।
तुंग गिरियों की शिखरियाँ
पार कर कर गान यह
भर गया सब वादियाँ है
वादियाँ निज गूंज से ॥५॥
बुलबुलों की चुलबुलों से
भी अधिक कितनी कशिश,
गान की इस तान में है।
खींच लेती जो दिलें।
मोहनी मन की निराली
लोक जन अनुरञ्जिनी ॥६॥
राहियों को राह चलने
से हुईं जो श्रांतियाँ,
दिव्य सुन्दर गान था, जो
सुखद शीतलता-मयी
सरस बरसा शान्तियों से

दूर कर देता स्वयम् ।।७।।
गगन-भेदी गीत गिरि का
कूक पिक से था अधिक,
हृदय हारी परम प्यारा,
तार स्वर में गूँजता,
शैल पवनों को कँपाता
स्पष्ट कवि ने था सुना ।८।।

ज्ञान की मेरी पिपासा
दूर कर दो हे, प्रिये,
कौन था वह गान कह दो
जो कि वह थी गारही? ।६।

दूर देशों में छिड़ा जो
युद्ध कोई था कभी,
वर्ष बीते बहुत जिसको
गाथिका क्या गा रही? १०।।

करुण रस से पूर्ण परितः
पीड़ भारी से भरे,
सदय से उद्गार क्या जो,
गीतिका में गा रही ।११।।

नूतनी घटना घटी जो,
हाल ही में थी कहीं,
क्या उसी का हाल लेकर
नम्र गीत सुना रही ।१२।।

बन्धुजन विच्छेद की या
शोक यातना दुःसह ?
दुःख क्या मृत मित्र का था,
या कि प्रियतम का विरह?

नियम जगती का यही है
नियति का हो दौर दौर,
फूल खिलते जो यहाँ हैं,
पतित होवें और और ।१४

गीत का क्या विषय था, रे
पूछना तुम छोड़ दो।
गीत का आनन्द लो बस,
बाग मन की मोड़ दो ।।१५

गारही जो गीत वह थी,
अन्त उसका था नहीं,
झुक, दराँती हाथ में इक,
दूसरे में धूम-गव ।
काटती फसलें उसे, था
प्रेम से गाते सुना ।।१६।।

सुन उसे मैं मुग्ध होकर
मूर्त निश्चल हो गया,
स्तब्ध रहकर कुछ क्षणों तक
चेतना को खो गया ।।१७।।

शून्य मन से पद बढ़ाता

पर्वतारोही हुआ ।
बाद में चिरकाल तक, मन
चिन्तना में लीन हो ।१८।।
आँख आगे, कान पीछे,
ध्यान में लवलीन था ।
काय चक्षु खुले हुए थे,
चित्त चक्षु मुँदे हुए ।।१६।।
भूत काया चल रही थी
मानसिक अविचल रही ।
दूर ओझल हो गया जब
गान की मैं पहुँच.से ।।२०।।
और फिर चलता हुआ मैं
दूर होता ही गया ।
कान मेरे गान को, अब
श्रवण में न समर्थ थे ।।२१।।
हृदय की अनुभूति में पर
गान का अनुराग था ।
सुन निरंतर पा रहा मैं
गान की वह तान था ।२२।।
बज रहीं हृत्तन्त्रियाँ थीं
मधुरतम सहगान था ।
हर्ष-पूरित मन हुआ था
स्नात चित् आनन्द में ।२३।।
दृष्टियाँ जब डाल देखा
जगत था आल्हाद का ।
राज पूर्ण प्रसाद का था,
लेश भी न विषाद का ।२४।।
फूल फूल खिला हुआ था
प्रेम सूत्र मिला हुआ ।
गान मुझको दे गया था,
ध्यान पारावार को ।।२५।।
गान मुझको दे गया था,
सौख्य के भण्डार को ।
रत्न निधियां कर गया था,
पूर्ण सब आमोद की ।।२६।।
उदधियों को भर गया था
हर्ष का सुखवर्ष कर ।
सृष्टियाँ वह कर गया था
लास्य की, उल्लास की ।२७।
लहर हृदयों में उठाकर
सुखद औ आनन्द की,
दे गया था तोष अनहद
दोष मन के दूर कर ।।२८।

मेघ से

(जब कि मेघ गम्भीरा नामकनदी पर से गुजर रहा है।)

मेघ ! ये 'गम्भीर' तटिनी

प्रेयसी तेरी परम ।
अमल निर्मल नीर सुन्दर
बह रहे जिसके स्वयम् ।।१।।

देखलो छाया तुम्हारी,
पानियों में पड़ रही,
प्रेम से ले कर हृदय में,
प्रिय तुम्हें है बढ़ रही ।।२।।

हाथ अपने सब उठा कर,
शाख जो वानीर की,
सरस मनहर हरित उत्तम
वेतसें जो तीर की,
प्रेम से तुम को बुलातीं,
आज हैं ये प्रेयसी ।।३।।

सलिल वसनें नीलजल की
तट नितम्बों से हटी ।
नग्न हो गईं जो कि ये हैं
तीर-भू मानो कटि (कमर) ४।

छोड़ कर क्या जायगा, घन,
ये बताओ तो, कवि ?
विवृत जघनों का लिया था,
स्वाद जिसने, हाँ, कभी ?

(मेघ दूत के आधार पर)

कुम्भ मेले का दर्शन

कुम्भ का मेला, अचम्भा,
देखने हम हैं चले।
देखते औ' पूछते हैं
साथ मिस्टर, बागले।
घाट पर कपड़े टँगे थे
रेशमी सूती सभी,
टैरिलीनें भी बहुत थीं
जो न देखीं थीं कभी।
बागले कहने लगे तब
एक सज्जन को बुला,
"वस्त्र भाई हैं किन्हों के
भाग्य किनका है खुला?"
"नग्न रहते जो कि जन हैं
वस्त्र हैं ये पहिनते।
साधुओं नागों के समझो,
अधिक हम नहिं जानते।"
बागले चुप रह गए तब
कदम आगे बढ़ गए।
देख आते हाथियों को
सड़क से हम हट गए।
हाथियों के साथ चलते
अश्व भी कुछ थे वहाँ,
पालकी औ' डाँडियाँ थीं,

स्कन्ध पर उठती जहाँ।
हाथियों पर हौदियाँ थीं
जो बड़ी थी शानदार
वेश कीमत स्तम्भ चाँदी
के खड़े जिन पै थे चार।
काठियाँ ज़ीनें बँधीं थी
तंग और रकाब से।
बढ़ रहे थे अश्व हलकी
एडियों की दाब से।
"गौर ग्रीवा तुङ्ग मस्तक
कौन हैं जो हैं सवार, ?
बागले का प्रश्न यह था
पथिक जन से बार बार।
"वीतरागी त्याग तृष्णा
मोह माया से रहित
जो कहे जाते, विरागी
नाम पावन से प्रथित।"
देख कर वैराग्य ऐसा
बागले जी दंग थे,
चल रही दुनियाँ है कैसी
अजब जिसके ढंग थे।
बात की लो बात में हम,
पहुँचते हैं गंग तीर
पुलिन सिकता का बिछा था
बह रहा था शुभ्र नीर।
खेलते उस तीर पर थे
बाल प्यारे हास में,
गान गाते मुसुकराते
नाच नचते रास में।
बागले भी चुप रहे ना
कर रहे हैं चपलता,
पूछते इक बाल से हैं,
"कौन है माता पिता ?"
बाल भोला, तुरत बोला,
जो भि उसको था पता।
"तात तो हैं ब्रह्मचारी
मात का नहिं ज्ञान है।
ब्रह्मचारी पुत्र होने
का हमें अभिमान है।"
शान्त चित से सोचते तब
बागले आगे बढ़े,
महल आगे जो खड़े थे
पौढ़ियाँ उनकी चढ़े।।
रत्न पीले लाल नीले
पुष्प रूपों में जड़े।
मरकतों की पत्तियों से
जो न थोड़े, थे बड़े।
फ़र्श मरमर संग के थे

चम चमाते रंग के
ऊँचियाँ अट्टालिका थीं
कलश सुन्दर ढंग के ।
मौन रहते बागले नहिं
देख कर दरबान को ।
"कौन रहते हैं इन्हों में
तरसता हूँ ज्ञान को ?"
"दास जो नहिं भोग के हैं,
हैं उदास हुए हुए,
वे उदासी वास करते
विमुख जो जग से हुए ।"
भींच करके होंठ दोनों
बागले जी चल दिए
जंगलों में 'भोग,' रहता;
माडियों में क्या नहीं ?
स्वस्थ जन में रोग रहता;
रोगियों में क्या नहीं ?

लाउड स्पीकर से न नीचा
शोर कुछ कानों पड़ा ।
गगन में ज्यों गरजता है,
कृष्ण बादल गड़ गड़ा ।
समझ से तब काम लेकर
बागले जी ने तुरन्त,
अंगुली दे कान दोनों
बन्द कर डाले वहाँ ।
कर सुरक्षा की व्यवस्था
कान-पर्दा नाँ फटे,
पूछते हैं "कौन आश्रम
हैं कि जिसमें आ डटे !"
"मौन मुनियों का है आश्रम
बोलते जो हैं नहीं ।"
"बोलने गर वे लगें तो,
फिर न रुकते हैं कहीं ?
शब्द उनके भेरियों से
बहुत ऊँचे नाद के ।
हैं गुँजाते गिरि गुहाएँ ।
वाद के संवाद के ।
बागले जी की नजर तब
दौड़ कर के थी गई
एक टोली जो स्त्रियों की
बाल लेकर आ गई ।
तार स्वर से एक बोली
"यश कुमारी किधर है ?
पुत्र उनके रो रहे हैं,
भूख से जो विधुर हैं ।"
क्या कुमारी रह गई वह
पुत्र जिसके हो चुके

ज्यों सुने ये शब्द त्यों ही
बागले जी झट रुके ।
सूर्य होता अस्त है अब
बागले भी व्यस्त हैं,
लौटते हैं निज घरों को
मानसिक श्रम ध्वस्त हैं।

—०—

कांगड़ी का ग्राम

किस तरह के काननों में
काँङ्गड़ी का ग्राम था ?
बन गया गुरुकुल जहाँ पर
सब सुखों का धाम था।
चित्र उसका शब्दमय, मैं
दे रहा हूँ आपको
ताकि दर्शन कल्पना से
आप करलो पाठको।
काँगड़ी का ग्राम चारों
ओर वन से था घिरा।
कर नहीं सकती है वर्णन
निर्बला मेरी गिरा।
हाथ हाथों को नहीं था
सूझता वन था घना।
साँप गोधा सेह आदि
से घिरा था हर तना।
रात सा गाढ़ा अन्धेरा,
मौत का था सामना,
चाँद सूरज की किरन को,
देखना मानो मना।
हाथियों के यूथ भारी
मौज से थे घूमते,
कृष्ण-मुख लंगूर भी थे
टहनियों पर झूमते।
सूअरों के झुण्ड भारी,
मोथियों को थूंथते।
महिष युद्धों में हमेशा
तरु अनेकों टूटते।
गरज से जंगल गुँजाता,
घूमता मृगराज था।
खलबली मचती मृगों में,
भीत ज़ीव समाज था।
भौंर भी मँडरावते थे,
मालती की मञ्जरी
प्याल को चुन चुन निगलती
लाल-मुख की बन्दरी।
बौर आते आम्र पर जब
कोकिलें थीं कूकतीं।
पञ्चमी थी स्वर उन्होंकी
दिल सभी के हूकतीं।

सेमलों के वृक्ष ऊँचे
डोडियों से थे भरे।
काक उन पर काँवते थे,
उल्लुओं से बिन डरे।
किंशुकों के पादपों पर
सारिकाएँ बैठकर,
बोलती थीं रागनियाँ ज्यों
झूलनों में पैठकर।
डोलते थे रीछ काले,
शहद छत्ते ढूंढ़ते।
मक्खियों को दूर कर वे,
शहद को थे चाटते।
राम गंगा राम गंगा,
रट लगाती तोतियाँ,
चञ्चुओं से कुतर लेतीं,
आम की थी अम्बियाँ।
बेरियों पर बेर इतने
बोरियाँ भर तोड़ लो।
डण्डियों पर आँवले या
आँवलों पर डण्डियाँ।
'राज करते मम पिता का ?'
शोर करती गीदड़ें,
एक झोंका नींद का भी
रात भर आता न था।

बारिशों में टर टराती
दर्दुरों की तातियाँ,
वेद का हो पाठ करतीं,
वटु गणों की पांतियाँ।
काननों के बीच प्यारा
काँगड़ी का ग्राम था
बन गया गुरुकुल सुहाना,
सब सुखों का धाम था।

--०--

दीपावली का गीत

आज आई है दिवाली
दीप अपना तू जगा।
स्नेह से भरपूर तेरा
दीप जगमग जगमगे।
आज बिछुड़ा जो कभी था
स्नेह से छाती लगे।
जग भरा सारा अविद्या
अज्ञता तम तोम से,
गूँज जावे मन्त्र धुनि से
सान्ध्य वन्दन होम से।
ज्ञान का दीपक जला तू
सत्य का दीपक जले।
कर्म का दीपक जला तू
धर्म का दीपक जले।

दीप से दीपक जला कर
साज सजनी तू सजा,
आज आई है दिवाली,
दीप तू अपने जगा।
धर्म से मुख मोड़ते जो
आर्यता को छोड़ते,
वेद के दीपक दिखा कर
आर्य उन को फिर बना।
विश्व भर में फैल जाये
आर्यता, न विनाश हो
साधुओं का त्राण होवे,
दुष्कृतों का नाश हो।
दुष्ट रावण मार कर के,
आज राजा राम फिर,
तीर सरयू पर पधारे,
प्रेम से अभिराम फिर।
जान जाये विश्व सारा
जीत होती सत्य की।
गीत गीता गारही है,
बात सुन्दर तथ्य की।
सजनियाँ घर घर मनाएँ
दीपियाँ घर घर जला।
विश्व को कर दें प्रकाशित,
इस अमा का तम भगा।

दीन दुखियों पर दया कर
मार्ग सच्चे को दिखा,
जारहे आनन्द स्वामी
शीश चरणों में झुका।
जो जगे अब तक नहीं हैं
'इन्द्र' वे दीवे जगा।
दूर हम से जो हुए हैं,
स्नेह से छाती लगा।

--o--

आज शिव की रात है।

मूल पूछे "माँ नि! मेरी
आज कैसी रात है ?"
"आज शिव की रात बेटा
आज शिव की रात है।
"आज बेटा, रात शिवजी
आँयगे हाँ आँयगे,
"आज मिल हम गीत उनके
गाँयगे हाँ गाँयगे।
"आज शिव की रात प्यारी,
आज शिव की रात है।
"आज बेटा कुछ न खाकर
रात सारी जाग कर,
"आज शिव की अर्चना कर,
आज निद्रा त्याग कर

"आज दर्शन शिव प्रभू के
पाँयगे हाँ पाँयगे ।
ईश की यह दात है ।
"आज शिव की रात बेटा,
आज शिव की रात है ।"
मूल शंकर ने कहा तब,
"मैं नहीं कुछ खाऊँगा ।
"रात सारी जागलूँगा
दर्शनों को पाऊँगा ।
"पुत्र क्यों न जाग लेवे,
जागती जब मात है ?
"फिक्र की क्या बात माता
आज शिव की रात है ।"

प्यार में माता पुकारी,
"मूल, तुम व्रत मत धरो ।
"आयु छोटी है तुम्हारी
बाल हठ को मत करो ।
"सूर्य सुन्दर के उदय से,
आज प्यारी प्रात है
"दिन बड़ा है, और लम्बी
आज शिव की रात है ।"

धर्म पर दृढ़ मूल ने पर
ठान व्रत को ही लिया ।
भूख की परवाह की नाँ
बूँद जल भी नहिं पिया ।
नींद आई पर न उसने
एक झोंका भी लिया ।
हाथ में ले पानियों को,
आँख पर छींटा दिया ।
गोद निद्रा-देवि सारे
मात पितु औ भ्रात हैं ।
दृढ़-व्रती पर मूल की तो
आज शिव की रात है ।

देव शंकर तो न आये
एक चूहा आ गया ।
जो चढ़ावा था चढ़ा सब
मौज से वह खा गया ।
मूत्र करता मूर्ति पर क्यों ?
तात यह क्या बात है ?
परम पावन शक्तिधर शिव
क्या न उसकी रात है ?

रात गुजरी शिव न आये,
प्रात भी लो हो गया ।
सर्वव्यापी देव शंकर

क्या कहीं पर सो गया ?
ज़ो हटाता मूषकी नहिं
ध्यान में मन खो गया,
मूल शंकर शान्तचित् है,
बोध जिसको हो गया।
'इन्द्र' जग से पूछता है,
"क्या जगत को ज्ञात है ?"
रात गुज़री, सजनि, शिव की
बोध की अब प्रात है।
जोत-ज्ञानी जगमगी से
दश दिशा अवदात है।

--०--

गुरुकुल की स्थापना

(महात्मा मुंशीराम जी जिन्होंने गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना की थी उनका उस समय क्या स्वप्न था ? बाद में जब महात्मा मुंशीराम जी ने संन्यास लिया और वे स्वामी श्रद्धानन्द जी के नाम से प्रसिद्ध हुए।)

पश्चिमी ही सभ्यता में
लोग सारे बह गए।
आज गुरुओं के न कोई
कुल कहीं पर रह गए।
मैं बनाऊँगा वही जो
ऋषि हमारे कह गए।
सोचकर के इस तरह पर
शान्ति मन में पा गये।
त्याग कर घर बार मुन्शी-
राम जग में आ गये॥
सत्य दृढ़ संकल्प कर के,
छोड़ कर विश्राम को।
खोज में फिरने लगे तब,
त्याग कर आराम को।
पर्वतों के आँचलों में,
ढूँढते कोई स्थली,
दूर शहरों से कहीं पर,
सस्य सी ज़ो साँवली।
मैं बनाऊँगा सुहाने
एक आश्रम को सुखद।
धार गंगा की जहाँ पर
तरल वहती हो विशद।
परम पावन, भव्य सुन्दर
जंगलों के बीच में।
रम्य खिलतीं, हृदय हारी,
पंकजें ज्यों वीचि में।
भारती शिक्षा प्रणाली
को चलाऊँगा वहाँ।

शिष्य गुरु की भक्ति वाले
ढूंढ लाऊँगा वहाँ ।
देखने का स्वप्न ऐसा,
कठिन व्रत था ले लिया ।
विश्वजित् राजा चले ज्यों
कूच त्यों जग में किया ।
शान्त-मुद्रा धैर्य-मूर्ति,
रोष था न विमर्ष था,
पूर्ण करना प्रण कठिन था ।
भीष्म सा दुर्धर्ष था ।
स्वप्न क्या था, पाठको वह
वैदिकी आदर्श था ।
आर्यता फूली समाई,
वर्ष होता हर्ष था ।
रंक का हो बाल चाहे
तनय होवे भूप का ।
जाति का नाँ भेद होवे,
भेद हो नाँ रूप का ।
फरक होवे तनिक भी नहिं
खान में या पान में ।
एक जैसे सादगी के,
वस्त्र हों परिधान में ।
प्रेम का ही भाव होवे,
साथ मिल ऐसे बसें ।

कृष्ण रहते थे सुदामा
साथ जैसे मित्र से ।
साम ऋक् यजु आदि चारों
वेद लें सन्मान को ।
सान्ध्य कालों के समय पर
यज्ञ के आधान हों ।
साथ छन्दस् गान होवें
साथ वीणा वाद हों ।
साथ विद्या पाठ होवें,
साथ ही संवाद हों ।
साथ मिल करके चलें सब
साथ सबके मन मिलें ।
प्रात वेला के समय पर,
सुमन से सब उठ खिलें ।
वानप्रस्थी शास्त्र वेत्ता
गुरु सबों के वृद्ध हों ।
मन्त्र द्रष्टा ऋषि सयाने
ज्ञान से समृद्ध हों ।
शुद्ध बुद्ध विचार वाले
मन वचन से कर्म से,
शिष्टतम व्यवहार वाले,
आर्य जन हों धर्म से ।
आयुओं में साठ से कम,
आयु का शिक्षक न हो ।

एषणाओं से घिरा जो,
आश्रमी गृह का न हो।
आप अपने आप करते,
हाथ से सब कृत्य हों।
ढूंढने से भी मिलें नहीं,
वेतनी जो भृत्य हों।
योग साधें रुद्ध कर के,
वृत्तियों को चित्त की।
त्याग कर सब कामनाएँ
पुत्र की क्या वित्त की।
शास्त्र वेदों को पढ़ावें।
भारती सन्तान को।
राम की सन्तान जो हैं,
कृष्ण की सन्तान को।
ब्रह्मचारी छात्र बन कर
दिल लगा करके पढ़ें।
छोड़ चिन्तायें जगत की
प्राप्त शिक्षा को करें।
ब्रह्मचारी ब्रह्म में जब,
चरण करता वर्य हो,
देख जग हैरान होवे,
आठवाँ आश्चर्य हो।
मञ्च व सिनेमा न होवें,
नाच हों नाँ रँग हों,

वेद औ वेदाङ्ग शिक्षा
में न कोई भङ्ग हों,
बालिकाओं के न कुल हों,
बालकों के साथ में,
ध्यान हों न भग्न उनके
हाथ हों नाँ हाथ में।

एक दिन वे पहुँचते हैं
इन विचारों को लिये,
वैदिकी आदर्श के इन
सत्य सारों को लिये।
रम्य पावन गंग तट पर
शान्त वेला शाम में।
स्वर्ग से सुन्दर सुहाने,
काँगड़ी के ग्राम में।
देख कर कहने लगे तब
देव जन की यह धरा।
गगन चुम्बी हिम नगों का
दृश्य कैसा सुख भरा।
गिरि गुहाओं से निकल कर
निर्झरों का जल झरा।
हिम ढके ये श्वेत गिरि-शिर
पाद वृक्षों से हरा।
रात दिन हैं मोर इन पर

नाचते गाते सदा ।
कौन उसका मूल्य आँके,
प्राकृतिक जो सम्पदा ।
इसलिए मैं इस जगह पर
काट करके वन सघन ।
कुल बनाऊँगा यहीं पर
कर निछावर तन व धन ।
हृदय में इस धारणा को,
जिस समय थे कर रहे,
'धन्य हो तुम' देव जन के ।
दुन्दुभी थे बज रहे ।
दुन्दुभी सुन सकल जनता
चरण उनके आ पड़ी ।
अमन जी भी एक उन में,
ग्राम जिनका काङ्गड़ी ।
शरण मुन्शीराम की ली,
हाथ दोनौं जोड़कर ।
नम्रता से सिर झुका कर,
मोह माया छोड़ कर ।
लीजिये यह तुच्छ मुझसे,
दान मेरे ग्राम को ।
दानियों में मान पाया,
अमर कर निज नाम को ।
वीर मुन्शीराम ने जब,
प्राप्त की निज कामना ।
शीघ्र लाये इक ध्वजा को,
सिद्ध कर निज साधना ।
ओम् की ऊँची पताका,
गाड़ दी उस भूमि में,
वेद की गाकर ऋचायें
गंग की उस ऊर्मि में ।

श्रद्धानन्द

चरण स्पर्शों से उन्हीं के
पूत गंगा धार थीं ।
वाणियों में वेद सरितें
प्रेम की आगार थीं ।
ज्ञान से था बुद्ध आत्मा,
सत्य से मन शुद्ध था ।
मानवी कल्याण, तप से
आत्म तेज प्रबुद्ध था ।
गिरिवनों में ऋषि जनों सा
प्यार उन के हृदय था ।
जन्म से वे थे महात्मा,
रूप उनका सदय था ।
सब जनों की उन्नति में
एक उनका ध्यान था ।
आर्य होवे जगत सारा

मनुज मात्र समान था ।
परम श्रद्धानन्द थे वे
ओज की इक मूर्ति थे ।
त्याग औ' बलिदान में तो
आहुति की पूर्ति थे ।
देश सेवा जाति सेवा
ध्येय था इक लक्ष्य था,
दलित सेवा में बताओ
कौन जो सम कक्ष था ।
आर्य संस्कृति धर्म वैदिक
में उन्हें विश्वास था ।
दास थे वे आर्य जग के
जग उन्हों का दास था ।

--०--

श्रद्धानन्द जी

टामियोंकी खून प्यासी
जब कि संगीनें बढ़ीं ।
तान सीना आगये तब
लो मुझे तुम मार लो ।
सूरमा माँ भारती का
कब किसी से था डरा ।
प्रेम उनमें जन्म-भू का
था अहो कितना भरा ।

वेदवित्-साधु संवाद

ब्रह्मचारी वेदवित् जी
स्नान करने के लिए,
तीर व्यासा पर खड़े हो,
देखते आँखें उठा ।
पूर्व दिक् की ओर अरुणिम
सूर्य देव उदय हुआ ।
धार व्यासा वह रही थी,
साधु जिस में था खड़ा ।
मन्त्र से कुछ बोल कर जो
हाथ दोनों जोड़ कर ।
अञ्जली से जल उछालन,
में लगा मुँह मोड़ कर ।
मूर्खता को देख उसकी
वेद जी कहने लगे ।
साधु रे क्या कर रहे हो ?
क्यों उछालो अम्भ को ।
सूर्य को नहिं जल मिलेगा ।
छोड़ दो इस दम्भ को ।
दूर है यह सूर्य लाखों
मील पृथ्वी देवि से ।
अम्भ कैसे पहुँच जाये-
गा वहां तक, साधु रे !
जब न छोड़ा अम्भ देना,

साधु ने था सूर्य को ।
धार में तब उतरते हैं
पैर नंगे कर उभय ।
पानियों को खुद उछाला
लवपुरी की ओर को ।
साधु कहता "पूर्व में है
सूर्य पर तुम तो सुजन,
दे रहे हो पानियों को
और ही दिशि ओर को ।"
"साधु सत्तम मैं तुम्हारा
अनुकरण हूँ कर रहा ।
सौ-पचासी मील होंगे,
और इस से हैं न दूर,
खेत मेरे लवपुरी में
धान जिनमें सूखते ।"
'क्या सुजन तुम होश में हो ?
यह बताओ तो मुझे ।"
पागलों सा काम क्या तुम
कर रहे हो छोड़ दो ।
खेत में पानी न पहुँचेगा
तुम्हारे वेदवित् ।
सौ-पचासी मील तो क्या
दो गजों तक भी नहीं,
छींट पहुँचेगी जलों की
जो उछाले दे रहे ।"
"साधु रे आश्चर्य वाली
बात तुमने है कही ।
समझ मेरी में कमी है
काम कुछ करती नहीं ।
तुम उछालो तो करोड़ों
मील जायेंगे चले ।
मैं उछालूं तो न वे क्या
एक दो सौ मील भी ।"

प्रार्थना

भीर भारी से मिला, फिर
भी रहा एकान्त हूँ ।
आगया अपनी कुटी में,
शान्त हूँ, निर्भ्रान्त हूँ ।

: २ :

अनुभव मुझे मिलता यहाँ पर
कोई मेरे साथ है ।
मैं न हूँ इकला यहाँ पर
हाथ मेरे हाथ है ।
यदपि आँखें देख पातीं
हैं, नहीं कोई कहीं,
तदपि मेरा एक सपना
है, कि अपना है यहीं ।

: ३ :

बोल स्वागत के न बोले
थे किसी ने कान में,
इस लिए मैं खो गया था,
प्रेम-भूखा ध्यान में।
कौन जन जिसने सहारा
दे, उबारा था मुझे ?
कौन जन जिसने कि प्यारा
और प्यारा था मुझे ?

: ४ :

हृदय मेरा हाय खाली
आ, इसे कुछ पूर दो,
हे प्रभो तुम हो कहाँ पर
जो निराशा दूर दो।
लो बचा मुझ को तुम्हीं अब
मैं कहीं कोसूँ नहीं !
या तुम्हें कह कर बुरे हो
हाय ! मैं रोसूँ नहीं !
सब दुखों के मूल हो तुम
कह न यूँ दोसूँ नहीं !
रोष को मन में जगा तुम
से घृणा पोसूं नहीं !

: ५ :

दो मुझे उत्साह वद्धंक,
एक आशा की झलक।
दो मुझे इन जीवनों में
बिजलियों की सी चमक।
शूरता दो वह कि जिससे
जीत लूँ नैराश्य को।
चेतना दो वह कि जिससे
जीत लूँ वैनाश्य को।
जीवनी वह ज्ञान दो कि,
कर्म में मैं लीन हो,
प्रेम कर तुम से सदा, तव
कथन पालूँ दीन हो।

व्यर्थ यह नहिं जायगी

एक भी यदि दर्द को-दिल,
की किसी की हर सकूँ,
आयु मेरी व्यर्थ जग में
तो नहीं यह जायगी।
ज़ख्म दिल में जो हुए हैं
यदि किसी के भर सकूँ,
आयु मेरी व्यर्थ जग में
तो नहीं यह जायगी।
टूटते दिल से दिलों को
युक्त यदि मैं कर सकूँ,
आयु मेरी व्यर्थ जग में

तो नहीं यह जायगी ।
दीन दुखियों के लिये यदि
शीघ्र ही मैं मर सकूं,
आयु मेरी व्यर्थ जग में
तो नहीं यह जायगी ।
नाथ जिनका है न उनमें
सौख्य यदि मैं भर सकूँ ।
आयु मेरी व्यर्थ जग में,
तो नहीं यह जायगी ।

—०—

बसन्तों का उजाला

एक कर्कश शब्द जो कि
प्रात में बोला गया ।
रात एक दिन को बनाता
है दुखद मेरी प्रिये ॥
एक उल्टी नज़र तिरछी
मित्र पर फैंकी गई
चाँदनी को है चुराती,
तप्त कर कर रात को ॥
रम्यता को हे प्रिये, यदि
दूसरों के जीवनों की,
हम कभी देते उजाड़ ।
तो हमारे जीवनों की
नष्ट होती रम्यता ॥
एक देकर मुस्कुराहट
को सुनो री सुन्दरी
शान्त करते रोष को हम
दे तरावट अन्दरी ।
क्रोध का जब जोश हम में
हो भभकता खौलता
दमन कर वह उस समय यदि
स्थिति मधुर में वदल दें ।
तो बसन्तों का उजाला
और परिमल फूल की,
फैल जायेंगे जगत में
दूर होगी शूल भी

—०—

फूल सुन्दर तोड़ना, रे
छोड़ दो तुम छोड़ दो ।

घन बरस कर आसमाँ से
सींचते हम को सदा,
सूर्य भी है शक्ति देता
रोज अपने ताप की ।
ग्रीष्म होवे शीत होवे
ताकि हम बढ़ते रहें ॥
सर्व द्रष्टा सर्वव्यापी
ने दिया है जन्म को
जन्म जो देता हमें, उस

ईश की महिमा करें ।
व्याप्त सारे विश्वभर में,
यह हमारा कर्म है ।
चार दिन से बीस तक की,
जिन्दगी बस है यही,
इन दिनों में मोह लेवें,
विश्व की ये कुल मही ।
हम सभी के सब हमारे
'एक' के हम हैं नहीं ।
ईश-धर्म विधान है, यह
विश्व के वासी जनो ।
एक हम को तोड़ कोई
ले कभी जाये नहीं ।
लालची संसार में हैं
तोड़ लेते जो हमें,
स्वार्थ में डूबे हुए वे
घर सजाने के लिए ।
विश्व है ये घर सभी का
हम सजाते रात दिन ।
घर सभी का क्यों बिगाड़ो,
एक इकले के लिए ।
तोड़ लेते पूजने को
मन्दिरों में मूर्ति पर
जा चढ़ाने के लिए वे
मूर्खता में डूब कर ।
सर्व व्यापी सर्वद्रष्टा,
ईश पर हम फूल सब,
विश्व-मन्दिर में चढ़े हैं ।
ईश के अर्पित हुए ।
क्या चढ़ाते हो हमें तुम
एक-देशी मूर्ति पर !
हम खिलेंगे विश्व में तो
चार दिन से बीस तक,
चार पल से बीस पल नहिं
खिल सकेंगे मूर्ति पर ।
सूख जायेंगे वहीं पर
जब चढ़ाओगे तभी
आ पधारें यदि यहाँ पर
विष्णु शंकर ब्रह्म भी
तोड़ कर के ले न लेंगे
भूल कर के भी हमें ।
तुम नहीं हो ऐ पुजारी
देव देवों से बड़े ।
तोड़ने का हठ किया जो
छोड़ दो बस छोड़ दो ।

सोचता हूँ, हे प्रभो !

जगत की सब वस्तुएँ
तेरी बनाई हैं हुई ।

है न कोई चीज मेरी,
जो करूँ अर्पित तुम्हें।
यदि करूँ न भेंट कुछ भी
तो रिझाऊँ किस तरह ?
यदि रिझाऊँ नाँ तुम्हें तो
सोचता हूँ, है बुरा।

स्थान तुम से है न खाली
हर जगह मौजूद हो,
घण्टियाँ फिर क्यों बजाऊँ,
मैं बुलाने के लिए ?
मूर्खता घण्टी बजाना,
समझता हूँ हे प्रभो !

मूर्तियों में व्याप्त हो तुम
फूल में भी हो तुम्हीं
तो तुम्हीं को ही तुम्हीं पर
मैं चढ़ाऊँ किस तरह ?
ठीक है नहिं ये चढ़ाना,
सोचता हूँ, हे प्रभो !

जो खिलाता सकल जग को
भूख जिसको है नहीं।
यदि लगाऊँ भोग उसको
तो भला मैं किस लिए ?
भोग मैंने गर लगाया,
तो करूँगा मूर्खता,
मूर्ख मुझ सा कौन है ?
सोचता हूँ हे प्रभो !

ज्योति जिसकी से चमकते
सूर्य तारे चाँद हैं।
दीप उसको गर दिखाया,
जग हँसेगा क्यों नहि ?
मैं हँसाई क्यों कराऊँ,
सोचता हूँ हे प्रभो।

शीश ग्रीवा या भुजायें
कोई जिसके हैं नहीं।
तो कहाँ पर मैं करूँ जा,
चन्दनों के लेप को।
क्यों घिसूँ चन्दन शिला पर
सोचता हूँ हे प्रभो !

जगमगाते ज्ञान–दिन भी
रात काली हैं बने।
हाय ! दुनियां है निराली,
अज्ञता घन हैं घने।
दूर होंगे क्या कमी ये,
सोचता हूँ हे प्रभो !

मूर्ख क्यों ये जग हुआ है,
जो समझता ही नहीं।
बात सादी सब प्रभू जी,
और बिलकुल सत्य हैं।
सत्य ठोकर खा रहा क्यों
सोचता हूँ हे प्रभो?
अद्भुती महिमा तुम्हारी
व्याप्त इस संसार में।
योग से मिलते हो तुम तो,
सोच से मिलते नहीं।
सोच ऐसा, विस्मयों में
डूबता हूँ हे प्रभो!

—०—

गा रहा संसार सारा,
गीत तेरे गा रहा।
प्रभु, गीत तेरे गा रहा।
कवि न गावेगा भला क्यों
गा रहा है विश्व जब,
आजड़ी भी गा रहा है,
गा रहा है ग्वाल जब।
गाँव में मेला लगा है
ढोल ढम ढम बज रहा।
नाचती गाती किसानन,
बाल उसका गा रहा।
हाथ लेकर हाथ में रे
बाँध घुंघुरू चमचमा।
तालियों को है बजाती
पैर अपने धमधमा।
फसल पीली पक गई है,
गा रही है कन्यका।
गान में वह मस्त इतनी
ध्यान है न अन्य का।
एक तारा ले के 'बस्ती'
बस्तियों में घूमता।
हृदय तन्त्री को गुँजाता,
गीत धुन की धूमता।
गा रही बुढ़िया गुनाती,
सूत चर्खा कातती।
गा रही घर बार वाली
छाछ मक्खन छानती।
गा रही है बहिन सेहरा
वीर के सिर बाँधती।
आगई लो द्वार डोली,
माँ हृदय है वारती।
कवि न गावेगा भला क्यों
गा रहा संसार है?
गान का सर्वत्र देखो,
प्रेम ही आधार है।

यह उसी की है कथा

उस तरह के ढंग सारे
वह बनाता आप है,
जिस तरह का रोग लेना
हो उसे इस जगत में।
बाप के थे पाँच बेटे,
साथ सबका था गुज़र।
चार उन में एक जैसे
पाँचवाँ उनसा नहीं।
स्वस्थ थे सब बालपन में
एक जैसे ही, प्रिये!
घर उन्हों के भैंस अपनी
दूध पीते थे सभी।
एक पीता पर नहीं था,
यह उसी की है कथा।
घी मलाई और मक्खन
बाप के घर थे बहुत।
मौज वे सब थे उड़ाते
एक पर था बेवकूफ।
चाय पीता था हमेशा
दूध अपना छोड़ कर।
हाय किस्मत में न उसकी
दूध पीना था लिखा।
खेलते थे, कूदते थे,
सैर करते थे सभी
एक उन में था न ऐसा
यह उसी की है कथा।
वह घरों में बन्द रहता,
खेलना न पसन्द था।
वस्त्र सब के साथ सिलते,
एक सी पोशाक में।
दर्जियों को थी हिदायत,
तंग वे सीवें नहीं।
तंग हो कर के कहीं लो,
छातियाँ जकड़ें नहीं।
साँस में हो कर रुकावट
खाँसियां हो जाँय नां।
सो खुले कपड़े सभी के,
सांस लेते थे खुला
खांसते नहिं थे कभी भी,
एक था पर खांसता
शौक उसको फैशनों का
लूज़ हों कपड़े नहीं
ऐन फिट हों बाडियों पर,
झोल उन में हों नहीं
नज़र आवे बस्ट सारा
छातियों की हो फिटिंग

बाप ने सुन्दर बनाया
एक घर था शान दार,
वैण्टिलेशन खूब उसमें
और धूपें खूब थीं ।
एक से लो एक बढ़िया
बीस कमरे थे बने ।
स्वास्थ्यदायक सूर्य किरणों
से प्रकाशित थे सभी ।
एक कमरा स्टोर वाला
तो अँधेरा था ज़रूर ।
शुद्ध वायु कीटनाशक,
थी प्रवाहित हर जगह ।
रूम सारे खिड़कियों से
थे सुशोभित खूब वे ।
स्टोर में खिड़की न कोई
ताकि चोरी हो नहीं ।
सख्त थी दीवार मोटी
ताकि चोरी हो नहीं ।
पाँच पूरे सैट बने थे
चार कमरों का हरेक ।
चार ने तो ले लिये पर
पाँचवा खाली रहा
पाँचवें का भाग फूटा,
स्टोर उसने चुन लिया ।

धूप जिसमें थी न आती
इस लिये बिजली जगी ।
बटन होता और उसका
रात में नहिं सिरफ था ।
वायु का न प्रवेश उसमें
इस लिए पंखे लगे ।
रोशनी तो आगई पर
कीट नाशक थी न धूप ।
वायु तो थी घूमती पर
वैण्टिलेशन था नहीं ।
शुद्ध बाहर की हवा तो
रूम में आती न थी ।
फेफड़ों से निकल वायु
थी लगाती चक्करें ।
प्राण में आयाम था नहीं
खान में न ताकतें
श्वास में न शुद्धता थी
वास में न प्रकाश था ।
सेहतें गिरने लगीं लो
पाँचवें की रोज रोज,
जोर कम होता गया, लो
भार भी घटता गया ।
मित्र उसका स्कूल में इक,
खाँसता था बल्गमें ।

मित्र यह गाढ़ा था उसका
बैञ्च भी तो एक थी।
क्या पता उससे लगा था
पाँचवें को रोग क्षय।
खाँसने वह लग गया लो
बलगमें खंगार कर।
प्राण वायु में रुकावट
भी उसे होने लगी।
शाम को होती हरारत
अब उसे हर रोज थी।
रात भर आने पसीने
सर्दियों में भी लगे।
चन्द हफ़्तों में हि उड़ लो
हाज़मा सारा गया।
चेहरा पीला पड़ा औ
खून सारा सुक गया।
छातियों में धड़कनें थी
सौ कदम चलना मुहाल।
खेल-कूदें या कि सैरें,
तो न करता था कभी।
सैर की अब चाह होवे
तो भि कर सकता न था।
क्लास में पढ़ने में आला
जो कभी अव्वल हुआ,
फेल वालों की बनी लिस्टों
में उसका नाम था।

:२:

'इन्द्र' की यह है नसीहत,
ध्यान धर सुनले, प्रिये।
उस तरह के ढंग सारे,
वह बनाता आप है।
जिस तरह का रोग लेना
हो उसे इस जगत में।
दूध पीने के लिए तो
भैंस उसके पास थी,
घी मलाई भी सभी थे,
मौज से खाता इन्हें।
शोक है कम-बख्त-वाले,
ने चुना था चाय को।
घर बड़े सुन्दर बने सब
एक सैट खाली रहा
किस्मतें तब फूट गईं लो
स्टोर जब उसने चुना
दर्जियों को थी हिदायत
सब खुले कपड़े बनें
हा! अभागा था वही जो
फैशनों का बन गुल
तंग कपड़ों को पहिन कर

रोक देता सांस था,
हाय ! इसकी बद नसीबी
मित्र भी कैसा चुना ।
तपदिकों में मुबतिला था,
बलगमों कों खाँसता ।
मौत को इसने बुलाया
आप अपने आप था ।
उस तरह के ढंग सारे
कर लिए इसने सभी
रोग क्षय को जो बुलाकर
के दिखा गै(ए) यमपुरी ।

—०—

प्रेम का बन्धन

जानते हो क्या उसे तुम
जो पड़ोसी पास है ?
दूर इतना, बीच में बस,
दो गजों की घास है ।
क्या कभी करते हो उससे
दो क्षणों की बात चीत ?
क्या खबर उससे है पूछी
साथ जिसकी है कि भीत ?
क्या कभी तुमने हैं पूछे,
फिकर जो उसको लगे ?
और चिन्ता दुःख उसके
सौख्य जिनसे हैं भगे ।
मुस्कराते चेहरे से
क्या नमस्ते की कभी ?
या सलामों को पुकारा
या कही है बन्दगी ।
हाल पूछा है कभी क्या,
हो दुखी या हो सुखी ?
प्रेम कुछ भी है दिखाया
दूर रख कर बे-रुखी ।
क्या पता तुमको कि उसका
हृदय है कितना विशाल ?
क्या पता उसके हृदय में
प्रेम के कितने प्रवाल ।
क्या पता कितनी करे वह
स्वागतें जो बे-मिसाल ?
यदि कभी तुम पूछ लो कि
आपका कैसा है हाल ?
शक न इस में है जरा भी
प्यार उपजाता है प्यार ।
क्या कभी तुमने बजाया,
हृदय से है प्रेम-तार ?
क्या कभी तुमने है पहिना,
ललित मुस्कानों का हार ?
या कभी मिलकर परस्पर,

है किया कोई विचार ?
मूल्य उसका आँकते हो
देख उसकी कार को ।
देखते उसकी हमेशा
राजनैतिक धार को ।
यदि चुनाओं को लड़े तो
जीत को या हार को ।
देख सकते हो ना तुम, हा!
प्रेम के संसार को ।
ध्यान हम करते नहीं कि
मानवी उसका हृदय ।
वस्तुतः जो चाहता है,
प्रेम का होवे उदय ।
हाथ दोनों हम मिलावें
प्रेम से गुजरे समय ।
चाव से हम वृत्त पूछें
पूछने में हो विनय ।
दिल सबों का एक सा
जो पिघलता एक दम ।
सेक लगता प्रेम का जब
प्रेम बहता है न कम ।
आर्द्र है उसका हृदय रे,
ठूंठ समझा है जिसे ।
एक छिन भी ठहर करके
यदि मिलोगे तुम उसे ।
चेहरा खिल जायगा वह
जिस तरह से फुलझड़ी ।
देखना उस दिन चढ़ेगी
बाढ़ खुशियों की बड़ी ।
भागते ही जा रहे हैं,
स्वार्थ के संसार में ।
दोष ही बस देखते हैं ।
शंस्य वाले कार में ।
स्वार्थ अपना छोड़ कर हम,
एक छिन ठहरें यदि,
निकट-वासी के लिए, तो
छिन बनेगी एक सदी ।
प्यार बरसों तक चलेगा,
क्यों गलेगा वह कभी ।
प्रेम का बन्धन बँधेगा
जो न टूटेगा कभी ।

—०—

चुटकुला

उमर पूरी साठ है ।
एक इन्स्पैक्टर कहीं से
स्कूल में थे आ गये ।
जाँचने विद्यार्थियों को
प्रश्न था इक दे दिया ।

तीस मीलों पर चली जो
गाड़ियों का प्रश्न था।
शीघ्र मन में लहर ऐसी
उठ पड़ी कहने लगे।
"प्रश्न जो ये गणित वाला
छोड़ दो करना इसे।
प्रश्न करना और ही है
आयुओं का छात्र गण !
ध्यान से खामोश होकर
के सुनो अब सब इसे।
एक लड़के को इशारा
अंगुली से कर दिया,
और बोले सहम करके
रहम दिखलाते हुए।
"शीघ्र लड़के तुम बताओ
उम्र मेरी को मुझे।"
क्लास में से एक ने तब
हाथ ऊपर कर दिया।
छोड़ कर के पूछने को
प्रथम लड़के से तुरन्त

हाथ वाले से उन्होंने
पूछना शुरु कर दिया।
"हाँ, कहो तुम ही कहो अब
जल्द मुझको दो जवाब !"
"आप की है उमर पूरे
साठ की श्रीमान् जी,"
ठीक कहते हो सही, बिल-
कुल तुम्हारा है जवाव।
अब, कहो, शाबाश, लड़के
ये पता कैसे किया ?"
"एक मेरा भाई मुझ से
है बड़ा श्रीमान् जी,
लोग उसको नीम-पागल
हैं समझते जी सभी,
उमर उसकी तीस की, बस
अर्द्ध मैंने मान ली,
आप तो आधे नहीं हैं
सोच कर के यूँ अभी,
द्विगुण करके उमर उसकी
पूर्ण कर दी साठ है।

विचार तरंग और ऋतु रंग

अन्न की कर कर उपज जो
भूख करता दूर है ।
आप रहता है व' भूखा,
देश का दुःखी कृषक ।१।

करुण रस की क्या कथा, जिस
से न पिघलें पत्थरें ।
हृदय टुकड़ों में न टूटें,
आँख नाँ आँसू झरें ।। २ ।।
ठूँठ को कविता सुनाना
मत लिखो प्रभु, भाल पर
पारखी रस का रसिक तो
झूमता हर ताल पर ।। ३ ।।
यश नहीं बिकता कहीं भी
जो कि जाकर मोल लो ।
यश खज़ाने को कवे, तुम
कवित कुन्जी खोल लो ४।।

--०--

जानकी की कथा--

सौ-सौ छलांगें लगगईं
एक ही तहसील में ।
लाश निकलीं कूप से सब
एक ही तहसील में ।
बीरबानी साथ बच्चों
आज गायब हो गई ।।१।।
क्या न सोचोगे मनुज तुम
हृदय के इतने कठोर,
क्या मिलेगा स्वर्ग तुमको
जब नरक में ही न ठौर ?
दुःख दिल में बन्द लेकर
आँख मूँदी सो गई ।।२।।
पैर से जूते उतारे
गोद में ले दूध पीता
दूसरे में पाँच-बरसा
कह रही है मातृभूमे !
गोद लो बस अब तुम्हीं ।
सोगया संसार सारा,
है न अब परिवार प्यारा ।
शक्ति उस में है हि क्या जो
बंसिया सोचे बिचारा,
देवि हरि के स्थान की
देवि है बलिदान की ।
आज अबला सोगई
जान अपनी खोगई ।।३।।

'इन्द्र' आँसू जा बहा,
बावला तू जा कहा।
तीन जानें एक साथ
कूप में हैं तर रहीं।
भूप की है, रूप की है,
और तीजी जानकी
जो कि अपने मानकी।४॥
हाय प्यारे भूप सिंह!
छातियाँ माँ की न छोड़ीं
चूसते स्तन की थे जोड़ी
क्या पता तुम को कि कूँवाँ
चढ़ गया जल था कि धूँवा।
जान अपनी खोगये।
हाय प्यारे भूप सिंह! ५॥
लाश तीनों की हैं आई
पोस्ट मौर्टम मेज पर
डाक्टरों ने चीर देखीं
जानकी ने तीन दिन से
एक भी रोटी न खाई ॥६॥
पुलिस बैठी सोचती है
खुदकशी का केस है!
सोच करके पुलिस ने फिर
खुदकशी की जो दफा थी
वो लगाई, वो लगाई ॥७॥

क्यों न सोचा, तब किसी ने
क्यों न सोचा, अब है भाई
जानकी ने जाँ गँवाई
पर दशा न देश की रे
सुधर पाई, दुःख दाई ॥८॥
देश तेरा जोगियों का
देश तेरा भोगियों का,
कर्म जिनका रोगियों का
देवियाँ वो क्या बचावें ?
दर्द दिल जिनके न आवें।
जानकी मुल्ज़िम बनी हा!
मौत अपनी मर गई ॥६॥
जानकी नाँ मर गई रे
रोग पीड़ित है बड़ा वह
भूत जिस के सिर खड़ा।
देश यह हरियान है जो
मरघटों का स्थान है वह।
जानकी की जान का बलि-
दान है औ' जानकी के
प्राण का प्रस्थान है ॥१०॥

--०--

दया का दान

दया किस नींद सोती है,
बड़ी गहरी में होती है ?

जु शबनम के बने आँसू
गिरा कर रोज़ रोती है ।१।
सितम के तेज़ काँटें कुछ
जुलम के गुल पिरोते हैं ।।२।।
रिवाड़ी के गरीबों को
बुरे जिनके नसीबों को
बड़ा लूटा खसूटा था ।
मुनाफे खूब ले ले कर
कहीं जो मूल से ज्यादह
गुने दस दस न वाजिब थे ।
जु लेने ना मुनासिब थे,
धरम के सिंह दानी ने ।
धरम के नाम दमड़ी तब
अलग रख लीं पिटारी में
कि आयेगा कभी कोई,
कि किस्मत जिसकी हो सोई,
कि अन्धा या कि लूला ही,
कि लंगड़ा या कि पिंगुला ही
मैं तब टर्रा के फैंकूँगा ।
दया के पुण्य लूटूँगा ।
मरण बन्धन से छूटूंगा ।३।।
मुटाये सेठ साहिब जी
महादानी महाज्ञानी,
दया उनकी बलाइयाँ ले
जगत उनकी भलाइयाँ ले,
जु करती पुन्न दानों को
सबक देती जमानों को ।४।।
सुनें बाटी के सब यादव,
सुनें दुनियाँ के सब मानव ।
यही है प्रश्न छोटा सा
कहो मानव कि है दानव ?
नहीं मानव, नहीं मानव
यही दानव, यही दानव ?५।।

--०--

'ये रहेंगे ही नहीं'

आंख तेरी देखती जो
वह सभी छिप जायगा ।
शक नहीं कि जायगा सब,
कुछ न रहने पायगा ।।१।।
सुन मना रे इस जगत् से
जाँयगे सारे स्वयम् ।
जीवधारी या अचेतन
ये रहेंगे ही नहीं ।।२।।
पैर तेरे चल रहे हैं,
देश जिस पर ऐ मनुज
डर नहीं तुम को जहाँ पर
दानवें हों या दनुज ।।३।।
जो भि कुछ तू, और तेरा

जो भि कुछ है वह सभी।
जायगा ये सब यहाँ से
याँ, न रहने पायगा ।।४।।
ध्यान कर इन शब्द पर तू
"ये रहेंगे ही नहीं"।
सूक्ति यह अत्यन्त उत्तम
स्वर्ण अक्षर से लिखो ।।५।।
सत्य का यह रत्न ऐसा
और इस से मूल्यवान,
विश्व भर में है न दूजा,
पूछलो सब वित्तवान ।
जगत के विद्वान सारे
बुद्धिमान औ' ज्ञानवान।६।।
क्या युवा या वृद्ध जन सब
हैं इसी के ही उपासक
जगत की ये सार-सूक्ति
पूछ लो सारे विचारक ।७।।
काव्य से भी प्राप्त होती
शान्ति उतनी है नहीं।
शान्ति जितनी प्राप्त होती
इस त्रिकाली सत्य से ।।८।।
"फिकर करता क्यों तु उनका
जो रहेंगे ही नहीं ।
सोच उनका क्यों है करता
जो रहेंगे ही नहीं ।
मोह करता क्यों तु उनसे ।
जो रहेंगे ही नहीं ।
द्रोह करता क्यों तु उन से
जो रहेंगे ही नहीं ।।६।।
क्यों न तेरी सब से समता?
क्यों है तेरी उनसे ममता ?
जो रहेंगे ही नहीं ।
राम में मन क्यों न जमता ?
क्यों रमा में जाय रमता
जो रहेगी ही नहीं ?।१०।"

--o--

मनुआं तुम घबराना मत नां

जो भी हो तुम ऐ मानव ।
चाहे जावो चले कहीं ।
शब्द सुनो ये मेधा वाले
भूल न जाना इन्हें कहीं ।।१।।
जो कुछ तुम पर बीत रहा है,
गुजरेगा वह निश्चय से ।
मनुआँ तुम घबराना मत नाँ
सुख में दुःख में या भय में ।।२।।
सूक्ति सुधा यह अमर रहेगी
पूछो इन असमानों से,
देख चुके जो गुज़री दुनियाँ

देखेंगे फिर ग्रानों में ।।३।।
बुद्धी इसको स्वयं खनन कर
लाई ग्रपनी कानों से,
जानो इसको हीरा सुख कर
पास रखो ग्रभिमानों से ।।४।।
प्यारी कम न समझना इस को
ग्रपने भी निज प्रानों से
बच्चे बूढ़े जायेंगे सब
सुख से या ग्ररमानों से ।।५।।

--o--

राज महलों में जहाँ कि
लाख भी कोशिश हुई ।
पुत्र राजा का बचा नाँ
ईश गति पूरी हुई ।।१।।

--o--

माता की मत बदलो भाषा,
माता है नहिं बदली जब
माता ही की भाषा जो है
भाषा फिर क्यों बदले तब ।।२।।
माता की वह भाषा होती
माता से जो पाई हो ।
तोतल बोलों सीखी होवे ।
बाद में नाँ ग्रपनाई हो ।३।।
माता की जो भाषा प्यारी
उसको क्यों ठुकराते हो ?
ग्ररबी हो क्या ग्ररब से ग्राये ?
ग्ररबी रखते फिर क्यों नाम ?
बोलो क्यों नहिं हो सकता है ?
नाम न मुस्लिम गंगाराम? ४।।

मूर्ख हों यदि पुत्र सौ भी
तो सभी हैं लानतें ।
उन सबों से तो भला है
एक जो गुणवान हो ।
तारकों का लाख भी हो
पर न तम को दूरता,
चन्द्र इकला एक निकले
चाँदनी से पूरता ।
जगत करता है उजाला
तोम तम काला भगा ।
शीत शीकर कौमुदी की
कान्तियों को जगमगा ।।५।।

पातिब्रत हो धर्मपत्नी
एक भोगी स्थिरमति ।
पर न हो लक्ष्मी सरीखी
भोगते जिसको सभी ।।६।।
कामिनी की कामना में

द्रव्य की या अर्जना में
वस्तुओं की चाहना में
भोजनों की भक्षणा में
तोष किस को कब हुआ? ।।७।।

तोष किस को कब हुआ है,
जगत की इन एषणा में ?
तृप्त प्राणी नहिं हुए हैं।
नाहिं अब हैं हो रहे।
नाहिं होवेंगे कभी वे
मोह में जो खो रहे ।।८।।

जब करी के पास मधुकर
दान लेने को गये,
तब करी ने कान फड़ फड़
कर हटा उन को दिया।
हे प्रिये सुन कुछ न बिगड़ा
षट्पदों का वे उड़े।
उड़ कहीं विकसित हुए
सितपद्म-वन को चल पड़े।
और पी पी मधु वहाँ पर
मौज करते ही रहे।
खेद है मुझ को बहुत रे
वावरे मद से भरे।
उस करी का, हाय! जिस को
समझ बिलकुल ही न थी।

भ्रमरगण से गण्ड युग की
मण्डना होने न दी ।।९।।

घास का तिनका न हलका
तूल रूई से अधिक.
तूल रुई भी न हलकी
याचकों से है अधिक।
वायुने नहि क्यों उड़ाया ?
जब कि इतना था लघु,
वायु बोली, "माँगले मुझ
से कहीं नाँ भय लगा।"
सोच ऐसा सोच कर मैं
बिन उडाये चुप रही ।।१०।।

सिंह आदि हिंस्त्र पशुओं
से भरे वन में पड़ा।
भी न मरता है कभी यदि
दैव रक्षा पर अड़ा ।।११।।

झूठ पर चलतीं अगर तो
सत्य पर भी हैं कभी।
परुष वादिनी हैं अगर तो
मिष्ट वादिनी भीं कभी।
हिंस्त्रकों सी क्रूर हैं तो
करुण रस से भी भरीं
दान देती हैं अगर तो
दान लेती भीं कभी।

खर्च करती गर खजाना
जोड़ती भीं तो कभी
गिरगिटों के रंगवालीं
मुकुट धर की नीतियाँ ।।१२।।

हैं पिता सम जगत में जो
मान्य उनको सखि सुनो।
जन्म दे जो, अन्न दे जो,
और दे जो ज्ञान को,
और जो उपनीत कर के,
वेद का सुख दान दे ।
और जो भय दूर कर दे
पाँच ये पूरे पिता ।।१३।।

प्रेम सच्चा है अगर तो
स्नेह को तुम पावगे ।
राह मिलती है उसे ही,
चाह रहती है जिसे ।।१४।।

शान्ति तुम को क्यों मिलेगी
भ्रान्ति को उत्पन्न कर,
शान्ति बिलकुल नहिं मिलेगी
क्रान्ति को उत्पन्न कर १५।।

देव वाणी यदपि मेरी
प्राण है निःसंशय ।
तदपि हूँ स्वाध्याय करता
अन्य भाषायें सुखद ।।१६।।

देव जो पीते सुधामृत
को सदा है स्वर्ग में
छोड़ देते क्या कभी वे
देवियों के अधर मद।१७।।

ज्ञानदाता व्याकरण के।
मुनि महा जो पाणिनी
प्राण उनके हर गई, हा!
जंगली इक सिंहनी ।।१।।

जैमिनी मीमांसदर्शी
दार्शनिक प्राचीन थे।
हस्ति उनको मथ गया, हा!
ध्यान में जब लीन थे ।।२।।

छन्द शास्त्रों के धुरन्धर
वेदवित् पिंगल मुनि
मकर जल में पकड़ उन को
ले गया जो थे गुणी ।।३।।

जानवर पहिचानते नहिं
'गुण' गुणी जन के कभी।
बुद्धि मेधा को न रखते
निर्विवेकी हैं सभी ।।४।।

प्रेम से सुन प्रेयसी, पहि-
चान देता हूँ बता,
पशु निरा वह सब का सब जो
गुण नहीं पहिचानता ।।५।।

सब गुणों की कान सुन्दर
जगत का नर रत्न है ।
सुखद सुन्दर रूप वाला
सफल विधि का यत्न है ।।१।।
पुरुष पैदा कर अरे क्यों
फिर उसे चूरा किया ।
मूर्तिमय जो प्रेम ही था
क्यों उसे बूरा किया ? २।।
विधि तुम्हारी मूर्खता का
क्या ठिकाना था अहो !
तोड़ना यदि था उसे तो
क्यों बनाया था कहो ? ३।।

हिन्दू एक गया था फ़ारस
किरपा किरपा कहते थे ।
फ़ारस में न समझा कोई
किरपा कौन बला होई ।।१।।

फ़ारस का तब बन्दा एक
बात है कहता उससे नेक ।
बोलो क्यों नहिं हो सकता है,
फ़जल इलाही हिन्दू नाम? २।।

फ़ज़ल इलाही कहते उसको
जिसको कहते किरपा राम ।।३।।

हिन्दू एक गया था मक्के,
ईसरदित्ता कहते थे ।
अरबों में ना समझा कोई
ईसर कौन बला है होई ? ।।४।
अरबों का तब बन्दा एक
सीख उसे है देता नेक ।
बोलो क्यों नहिं हो सकता है ?
ईसरदित्ता अल्लाह बख्श ।।५।।
ईश्वर को ही अल्ला कहते ।
देने को हैं कहते बख्श ।।६।।

कृमि कुलों से जो भरीं औ
किरम जिन पर रींगते
अस्थि नर की देखियेगा ।
मास जिस पर है नहीं ।।१।।
वमन आने को है होती
बू बुरी जो छोड़ती ।
श्वान का आनन्द बन गई
खूब उसको चूसता ।।२।।
कड़कड़ाता दाँत से है,
चाव से है चाटता ।
लपलपाती जीभ उसकी
लार भी है टपकती,
स्वाद कितना ले रहा, जो

आज तक पाया न हो ॥३॥
पास आकर उस समय पर
इन्द्र भी होवें खड़े
तो न देखेगा उन्हें वह
आँख फेरेगा नहीं ।
श्वान के मन हिचकिचाहट
लेश भर होगी नहीं ॥४॥

प्राप्त करके क्षुद्र-जन्तु
वस्तु भी निस्सार सी
मस्त हो जाते हैं इतना
भूल जाते जगत भी ।
इस तरह से उस समय पर
ध्यान देते ही नहीं
इन्द्र या सर्वेन्द्र आवें
फ़िकर होता ही नहीं ॥५॥

मुण्ड रोडा टिण्ड जिसका
सूर्य किरणों से तपा,
ढूँढता है छाँह ताकि
धूप से बच जाय वह ॥१॥
एक ऊँचे ताल नीचे,
नारियल के आगया ।
टूट करके नारियल तब
खट्ट सिर पर गिर गया ॥२॥
आपदें पीछा न छोड़ें
भाग्य फूटे की अहो ॥३॥

ग्रसित देखो चाँद रवि हैं,
गज भुजंगम भी बँधे ।
दीन हैं विद्वान सारे
विधि बड़ा बलवान है ॥४॥

वंश या विद्या नहीं जो
फल हमें देते कभी,
यत्न से की नौकरी या
शील नाँ लावण्य भी ।
फूलते हैं वृक्ष जैसे
समय आता फूल का ।
पुण्य जो संचित किये थे
पूर्व जन्मों में कभी,
फूलते हैं खुद समय पर
भाग्य रूपी वृक्ष पर ॥५॥

लोग कविता को बनाते
मैं उसी से हूँ बना,
लोग कवितायें सुनाते
पर उन्हें मैंने सुना ॥६॥

सलिल-सम्पद् सर बढ़े तो
मन कमल बढ़ते सभी,
सर घटे तो मरण पाते,
पर न घट सकते कभी ।।७।।

--०--

चित्त शंका उपजती है,
यदि बुरा न बुरा करे ।
निष्कलंकी चन्द्र पाकर,
कौन है जो नाँ डरे ।।८।।

(कुलाधारी)

बदलती तेवरें दुनियाँ
अजव इसके हैं रंगो रंग् ।
किसी सिर सेहरा बँधता,
उतरता अन्य से बेढंग् ।।६।।

(गीतिका)

सोज़ दिल था वह कि जिसकी
आह पर वाहें हुईं,
कवित निकलेंगे न मुँह से
'गर न दिल दाहें हुईं ।।१०।।

कवि कौन ?

नाम से प्लेटो हुआ था
दार्शनिक यूनान का ।
क्या कहा कवि कौन होता?
'पूर्ण अपने ज्ञान का ।'

वायु से हलका उड़े जो
कल्पना पर हो सवार ।
पागलों सा मस्त हो जो,
घूमता हो हर पहार ।।११।।

और जीलूँ

पलित हो गै केश शिर के
दाँत सारे गिर गये,
लकुटि से भी काँपते हैं,
पैर चलते हैं न ये ।
टाँग पतली पर सरकता
पायजामा शेष है ।
'और जीलूँ, और जीलूँ
कह रहा दरवेश है ।।१२।।

--०--

क्यों परीक्षा में लगा रे
देखता करता विचार ?
हैं न सर वे, नाहीं नर वे,
हों न जिनकी सीम पार ।१३।

--०--

नर भले औ' केश तो हैं
नमित होते यदि बढ़ें ।
नीच जन औ' कुच मगर हैं
अकड़ जाते 'गर बढ़ें ।१४।।

पक्षियों में धूर्त कौवा
मानवों में नाई है।
चौपदों में धूर्त गीदड़
औरतों में माल्हनें।
ये लिखा है नीतियों में
कवि न कहता है इसे ।।१५।।

--०--

मातृ सम जो मान्य जग में
पाँच उनको प्रिय सुनो।
राज-पत्नि, धर्मपत्नि,
जन्मदात्री, मात अपनी,
और चौथी पत्नि-माता,
पाँचवीं है पूज्य माता
श्रीमती गुरुदेव की ।।१६।।

--०--

कौन छूटा जाल से है,
जाल में पड़के कुरंग?
इसलिये क्यों व्यर्थ में ही
हो छुड़ाते मृदुल अंग?
चाहते हो भागना पर
छूट पाते हो नहीं।
यत्न करते हो निरन्तर
जाल जाये कुछ सुलझ,
पर सुलझता ही नहीं वह
और जाता है उलझ ।।१७।।

--०--

ऐ कवे कोई तुम्हारी
रसिक होते भी करे ना,
कवित की यदि शंसना;
ऐ कवे जब तुम सुनाओ
प्रेम से नगमें बनाकर
वाहवा होवे न उसकी जीभ पर;
ऐ कवे तुम ही बताओ
तो भला इससे बड़ा क्या
दुख तुम्हें महसूस होगा?
ऐ कवे मजलिस में बैठा
ठूँठ कोई दे रहा हो,
दाद को बे-वक्त पर।
और कहते हो न थकता,
मरहवा, वा,' मरहवा!
उचकता हो नाचता हो
हाथ ऊँचे और नीचे
को घुमाकर हर दफह।
शेर चाहे हो खतम या
ना हुआ होवे खतम्।
देखकर उसका तमाशा
ताकते हों शायकीन!
ऐ कवे तुम ही बताओ

तो भला इससे बड़ा मह-
सूस होगा कौन दुख !

--०--

अर्जना धन की करोगे
किस तरह ?'

'काम बिगड़ेगा कि
होगा वह सफल ?
इस तरह से सोच कर
यदि काम करते हो नहीं ।१।
'धन लगाऊँ तो लगाया
ही न खो दूँ मैं कभी ।'
इस तरह से सोचकर
यदि धन लगाते हो नहीं ।२।
'खेत में खेती करूँ तो
नष्ट हो जाये न वह !'
इस तरह से सोचकर
यदि बीज भी बोते नहीं ।
तो बताओ भूख से क्योंकर
मरोगे तुम नहीं ? ।।३।।
'पुत्र मैं अपना पढ़ाऊँ
तो कहीं पढ़ते हुए '
रोग से मृत हो न जाये
इस तरह से सोच कर
पुत्र अपने को पढ़ाते हो नहीं
तो बताओ मूर्खता से
क्यों मरोगे तुम नहीं ?
तो बताओ क्यों न होगा
वंश सारा बेवकूफ ? ।।४।।
याद रक्खो संशयों में
डालना जग का नियम ।
डाल कर के संशयों में
जीवनों को; जीवनों को
पार करता है जो नर,
प्राप्त करता भद्र अपने
और पाता धान्य धन को
है विपुल ।। ५ ।।
संशयों में जीवनों को
यदि न डाला, तो बताओ
अर्जना धन की करोगे
किस तरह ? ६।।

--०--

ऋतु रंग

ऋतुओं का यथाक्रम वर्णन
(वसन्त,ग्रीष्म, पावस, शरत्, हेमन्त)

आ रहे ऋतुराज मानो
मस्त हाथी पर सवार ।
मधु रसें हैं दानवारि ।
भँवर करते हैं गुँजार ।

पुष्प गन्धों से सुगन्धित
बह रही भीनी बयार ।
कोकिलें शहनाइयों से
कह रही हैं बार बार ।
ग्रा रहे ऋतुराज प्यारे
मस्त हाथी पर सवार ।।१।।

जेठ की दोपहर, प्यासे
खोजते जल थे फिरे ।
मारवे, मरु में मतीरा
पा, समुन्दर कह, गिरे ।२।

दीर्घ दाघ निदाघ ने है ।
जग तपोवन सा किया ।
बाघ, साँपों, मृग, मयूरों,
को इकट्ठा कर दिया ।।३।।

वैर छोड़ा साथ मृग के
ग्रीष्म ग्राकुल बाघ ने ।
जग तपोवन सा किया, इस,
दीर्घ दाघ निदाघ ने ।।४।।

जेठ की गर्मी न सह कर
छाँह ग्राई छाँह में ।
सघन वन में या सदन में,
छिपगई तरु बाँह में ।
ग्रीष्म की ये लू नहीं है,
ताप भी न ज्वलन्त से ।
साँस, तापें उस विरह की,
जो हुग्रा है वसन्त से ।।

विषम गर्मी ग्रीष्म की थी
तृषित जल को था चला ।
ग्रमित जल निधि क्या करेगा ।
एक तरबूज़ा भला ।।

मेघ सखि इसको न मानो
धूम है यह ग्रवनि का ।
जगत जानो जल गया हो,
ये उसी की जवनिका ।।

घोरतम घन छा गया है ।
क्या पता दिन है कि रात ?
देख चकवा ग्रौर चकवी
से हमें होता है ज्ञात ।।

काल से काले कराले
सघन घन के घेर छूटे ।
प्रलय-सा जो बरसते ये,
मूसलों के धार टूटे ।।

शरत शूर नरेश से लो
चैन सब को ग्रब मिली ।
चल पड़े चहुँ ग्रोर पन्थी ।
हर्ष में दुनियाँ खिली ।।

—o—

वैदिक तरंग

वेद वाणी क्या है ?

जो कहानी अब चली है,
है पते की बहुत वह
ध्यान धर रखना दिलों में
भूल मत जाना कभी ।
सृष्टि का आरम्भ था तब
आर्य जन का जन्म जब
इस धरा के उच्च तल पर
जगत इस में था हुवा ।
था ज़माना वेद का तब
वेद वाणी बोल कर ।
भाव थे हम प्रगट करते
आशयों को खोल कर ।
वेद-वाणी में हि थे हम
गान करते काव्य कर ।

काव्य हैं ये वेद सारे
जो न मर सकते कभी ।
यदपि हो गै हैं पुराने,
जर्जरित होते न भी ।
जो न जरते, जो न मरते,
देव के प्रिय काव्य हैं ।
ध्येय हैं ये, गेय हैं ये,
सर्वजन संभाव्य हैं ।
प्रथित हुई थी वेद वाणीं
छन्द सों के नाम से
भ्रष्ट ही वह वेदवाणी
कह रहे संस्कृत जिसे ।
और दे दो नाम इस को
चूँकि है संस्कृत न ये ।
यास्क जी ने क्या कहा है ?
देखलो जाकर निरुक्त ।
नाम इस का वे न लेते,
हैं कहीं पर संस्कृत ।
वेदवाणी ही विगड़ कर
लोक की भाषा बनी,
लोक की भाषा बिगड़ कर
थी कभी प्राकृत चली ।
प्राकृतें भी बिगड़ गईं जब
तो बनी अपभ्रंश थीं ।
पर रही अपभ्रंश भी नहिं,
भोज ब्रज अवधी हुईं ।

हाँ इन्हीं से ही निकल कर,
आज की हिन्दी हुई।

--०--

देवताओं के नाम कैसे पड़े ?

कार्य की जो पृथक्तायें
नाम उन से हैं बहुत।
देव देवों के हुवे, यह
यास्क कहते हैं स्वयम् ॥
वेद ऋक् के मण्डलों में
अग्नि को औ' विष्णु को,
साथ देते आहुती हैं,
पर स्तवन साझा नहीं।
इस तरह के और भी लो
ये उदाहरण पेश हैं,
अग्नि पूषा देव दोनों
साथ लेते आहुती
पर न कोई मन्त्र ऐसा,
स्तौत होवें साथ वे।
अग्नि है वह देवता कि
भूमि जिसका वास है,
इन्द्र का भी वायु का भी
क्षेत्र जानो अन्तरिक्ष।
(भूमि नीचे द्यौ है ऊँचे,
बीच में है अन्तरिक्ष।)
लोक ऊँचे तीसरे (द्यु) में
सूर्य जी का वास है।
कृत्य अध्वर जो सिखायें
वे सभी अध्वर्यु हैं।
यज्ञ कर्ता ऋत्विजों के
नाम से विख्यात हैं।
प्राप्त कर सब ज्ञान याज्ञिक
ब्रह्म से प्रख्यात हैं।

--०--

(ऋक मण्डल१०, सू०७१, म०११)

अध्वरों में ब्रह्म, होता,
और उद्गाता तथा।
तीन ये अध्वर्यु चौथा
याग-याजक चार हैं।

--०--

कार्य सबके हैं पृथक्

पुष्टि करता जो ऋचों की
होतृ कहलाता है वह,
पोषता होमाग्नि इस से
है पुपुष्वा नाम भी।
गान करता जो ऋचें, उद्
गात कहलाता है वह।
शक्वरी के गान करता,
साम गायक है वही।

यज्ञ–विद्या ज्ञान सब ले
ब्रह्म बनता ज्ञानवान्
वह सिखाता यज्ञ विधि को
जात-विद्या बुद्धि मान् ।
तीन ये । अध्वर्यु चौथा
यज्ञ की शुभ वेदिका
माप कर निर्माण करना
काम उसका है सदा ।।

--o--

आरण्यक

गिरिवनों में पठन जिनका
था किया एकान्त में ।
वे हुवे थे ख्यात सब
आरण्यकों के नाम से ।
यज्ञ यागों में लिखे जो
तथ्य आत्मिक हैं कहीं ?
हाँ, वही मीमांसकों ने
कर विचार दिये यहीं ।
प्राणविद्या की महत्ता
को भि गाया है गया ।
काल की परमार्थता को
भी जगाया है गया ।।४।।
ब्राह्मणों के बाद आयीं
हैं सभी आरण्यकें ।
ब्राह्मणों में यज्ञ-विधि है,
जो न इन में है कहीं ।।५।।
आ चुकी आरण्यकें जब
तो जगीं थी उपनिषद्
विषय इनका आत्मज्ञानें
सो सभी हैं गा रहीं ।।६।।

--o--

उपनिषद्

उपनिषद् तो बहुत संख्या
में सुनी जातीं, सुनो,
मुख्य उन में दस सिरफ़ हैं ।
शेष जो हैं गौण हैं ।
ईश सब से प्रथम है, फिर
केन कठ औ प्रश्न हैं ।
मुण्ड औ माण्डूक्य हैं फिर
ऐतरेयी तैत्तरेय ।
नवम है छान्दोग्य–नामी,
दशम वृहदारण्य है ।
शांकरी है भाष्य दस पर
बाकियों पर है नहीं ।
ईश आई है कहाँ से
ये कहानी भी सुनो,
वेद चारों में यजुष् के
अन्त का अध्याय है ।

हाँ, वही चालीसवाँ
अध्याय कहते हैं जिसे ।
मन्त्र ईशावास्य आदिक
बीस से कम तीन हैं ।
हाँ, यही हैं, मन्त्र सत्रह
गूढ़ दर्शन तत्व के
कर्म का उपदेश देते,
कर्म जो निष्काम हैं ।
रूप ईश्वर का सुनाया
कवि, मनीषी कह उसे,
और अव्रण भी कहा है
काय हो नाँ व्रण कहाँ ?७।।

--०--

मन्त्र लहरें

तं वः सखायो मूर्तिभिः

(सामवेद, पूर्वार्चिक,
दशम खण्ड, तृतीय सवन)

मित्र, मेरे तुम पुराने
ईश की स्तुतियाँ करो ।
मित्र, तुम स्तुति गान द्वारा
मोद मद याचन करो ।
रूपहवि का गान सुन कर
ईश हो जाते प्रसन्न ।
लोरियां सुन कर यथा हैं,
शिशु सभी होते प्रसन्न ।।१।।

--०--

ओम् नमः सायं नमः प्रातः
नमो रात्रया नमो दिवा ।
भवाय च शर्वाय च
उभाभ्यामकरं नमः ।

(अथर्व वेद ।)

दिवस में उसको नमः हो,
रात में उसको नमः,
प्रात में उसको नमः हो,
साँझ में उसको नमः ।
जन्म देता जो सभी को,
हो नमः उसको सदा,
प्राण हरता जो सभी के
हो नमः उसको सदा ।
सर्व रूपों में नमः हो,
सर्व कालों में नमः ।
हे प्रभो ! मेरा नमः लो,
ओं नमः हो, ओं नमः ।।१।।
यदि उषा है नाम तेरा
औ चमकती तू अगर,
सूर्य हूँ मैं क्यों न पीछे,
तो तुम्हारे जाऊँगा ।
मर्त्य योषाओं के पीछे

जायगा यह है लिखा,
तो भला क्या अनुगमन से
मैं कभी घबराऊँगा ।।२।।

--०--

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनाम्
चिकितुषी यज्ञियानाम् ।
तां मा देवा व्यदधुः पुरत्रा
भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम् ।
ईश्वरी हूँ शक्ति जग की,
धन मुझी से विश्व के जन,
प्राप्त करते हैं सभी ।
ब्रह्मज्ञानी हूँ तथा मैं,
यज्ञियों में हूँ प्रथम,
उस मुझी को, जो कि हूँ मैं,
बहुत रूपों में अवस्थित,
बहुत भूतों में प्रतिष्ठित,
पूजते सब देवगण ।

--०--

तृष्णा

(या दुस्त्यजा दुर्मतिभिः)

छूटती नहिं छोड़ने से
व्याधि है प्राणान्त की ।
दुर्मती क्या छोड़ देंगे ?
दुस्त्यजा जिनके लिये ।
जीर्ण भी हो जाय काया
मनुज की चाहे सभी,
पर नहीं जो ज़ीर्ण होती,
त्याग दो तृष्णा, प्रिये ।

--०--

स्फूर्त जीवन

स्पन्दता में स्फूर्त जीवन
मूर्त मृत शव में नहीं ।
प्राप्त होगा फल तुम्हें तब,
जब करोगे हिलचुलें ।
दैव को दुत्कार दोगे ।
लोक लज्जा त्याग कर ।
छानते दुनियाँ फिरोगे,
कोशिशें करते हुए ।
कशमकश की ज़िन्दगी
सिर धारकर बढ़ते हुए ।

--०--

अग्निामरुत सूक्त

(महेन्द्रवज्रा लय में)

(ऋ०, म० १ सू० १९ म० १)

हे अग्नि आवो जी आप आवो,
इस चारु अध्वर में आप आओ,
आहूत करते हम आपको हैं ।
लो, सोम सुखकर का पान पावो,

इकले न केवल खुद आप आना,
हे देव मरुतों को साथ लाना ।।

(अग्नि-मारुत म० २)

शंसा जगत में यह आपकी है ।
महिमा महानों में आपकी है ।
तव यज्ञ कर्मों का कर उलङ्घन,
ना कोई उत्कृष्ट बना कभी है ।
इकले न केवल खुद आप आना
हे देव मरुतें भी साथ लाना ।

(अग्निमारुत सूक्त म० ३)

महिमा महा है मरुतों की अग्ने
है मेल उनका, सब देव गण से,
वे जानते हैं जल किस तरह से,
बरसें व सरसें सब भूमियों को,
इकले न केवल, खुद आप आना
हे अग्नि, मरुतों को साथ लाना ।

(अग्नि-मारुत मन्त्र ४)

बल का अनादर न जिनका हुआ है।
जो अर्कपूजा को कर रहे हैं,
होते हुवे जो अत्यन्त उग्री
उत्पन्न उदकों को कर रहे हैं ।
ओजें न जिनकी हुई हैं अनादृत
तुम अग्ने केवल इकले न आना
मरुतों को अपने भी साथ लाना

(अग्निमारुत मन्त्र ५)

हिंस्त्रक विनाशक धनधान्य युक्त
ओ शुभ्र कीर्ते, ओ उग्र अग्ने,
इकले न केवल, खुद आप आना
अपने सहित तुम मरुतें भी लाना,

(अग्निमारुत मन्त्र ६)

दिव लोक से भी जो लोक ऊपर
वे ही कहाते रवि लोक से हैं,
उन से भि ऊपर है वास जिनका
हे देव अग्ने ! इकले न आना ।
उन देव मरुतों को साथ लाना ।

(अग्निमारुत मन्त्र ७)

मरुतें बली जो पर्वत चलातीं
जिनसे तिरस्कृत अर्णव समूचे ।
उन देव मरुतों को साथ लाना,
हे देव अग्ने ! इकले न आना ।।

(अग्निमारुत म० ८)

मरुतें कि जो तेज औ' रश्मियों से
छाती समुद्रों को हैं सदैव,
हे अग्नि उनको तुम साथ लाना ।
इकले न केवल खुद आप आना ।

--०--

सत्येन वायुरावाति

(अनु ६,३,२)

सूर्य भाता सत्य से है,
वायु बहती सत्य से,
वाक् प्रतिष्ठा सत्य से है।
परम ऊँचा सत्य है ।।

पाठान्तर--

सत्य से बहती है वायु,
सूर्य चमके सत्य से,
सत्य में वाणी प्रतिष्ठित,
सत्य ही सर्वोच्च है ।।

--०--

सुषारथीरिव यन्मनुष्यान्

यदि कभी भी वेग वाले
अश्व काबू में न रह कर
रश्मियों को खींचते औ
भागते स्वच्छन्द हैं,
तो उन्हों का कर नियन्त्रण
चाबुकों से सारथी
मोड़ लेता बाग डोरें
उचित पथ पर है यथा
उस तरह की शक्ति प्रभु मन
मोड़ने की दो हमें।
हे प्रभो! यह मन चलावे,
उचित मार्गों पर हमें।
मन कि जिसका वास देही
के हृदय में है हुवा,
पर जरा से ग्रस्त होता
जो कभी भी है नहीं।
शीघ्रता में जो कि शीघ्रों
से हमेशा शीघ्र है।
एक उससे है हमारी,
बस यही अभ्यर्थना,
"शुभ करो संकल्प हे, मन!"
बस यही, है याचना।

--०--

यज्जाग्रतो दूर मुदैति--

चेतना में बेखबर हो
दूर जाता जागते।
सुप्त होकर नींद में भी
मन, न चूका भागते।

--०--

काले तपः काले ज्येष्टं

(अथर्व १९-५३-८)

काल में तप तप्त होता,
काल में ही ब्रह्म है।
काल ईश्वर है सभी का
काल में ही ज्येष्ट है

काल में ही वह समाया,
जो प्रजापति का पिता ।

--०--

'वशा'

ये वशा ही है जिसे
अमृत पुकारा है गया ।
ये वशा ही है जिसे
मृत्यू पुकारा है गया ।
पितर देवों औ' मनुष्यों
को न समझो और कुछ ।
ये सभी, औ असुर, ऋषि भी
सब वशा हैं, सब वशा ।

--०--

पर्जन्य सूक्त

(म० ५, सूक्त ८३, मन्त्र २)

पतन कर ओले व बिजुली
वृक्ष देते हो गिरा ।
हानि कारक जन्तु गण भी
नष्ट करते हो तुम्हीं ।।
जब बरसते हो बहुत या
जब बरसते हो नहीं,
जगत के सब जीव मरते
हाँ महाबध है वही ।
इस महाबध से सदा हैं,
भीत होते जीव गण ।
मेघ तुम निष्पाप हो कर
पाप शासक हो निपुण ।।
जब बरसते ही नहीं तो
दुष्कृतें हैं उपजतीं ।
तब बरस करके तुम्हीं तो
दूर करते हो उन्हें ।

--०--

इन्द्र सूक्त

(मन्त्र १, ७, ८, ९, १०, १२, १३,
१४, इन्द्रवज्री लय में)

जो जन्म से ही माना गया है,
देवों में सब से पहिला मनस्वी ।
वृत्रादिकों का वध कर्म कर कर
देवों को भूषित जिसने किया है ।
जिस की कि बलवान सैन्यों के डर से
द्यौ और पृथ्वी भी काँपते हैं ।
उसको ही जानो, है इन्द्र वो ही
उस को ही मानो, है इन्द्र वो ही १।।

(७)

जिसके प्रशासन में हम सभी हैं ।
क्या बैल, क्या गौ, क्या अश्व, क्या रथ?
या ग्राम वीरों के जो कहीं हैं,
उसके प्रशासन में क्या नहीं है ?

इस सूर्य का है जो जन्मदाता
जो जन्मदाता दैवी उषा का
जो देव प्रेरक है सब जलों का,
है इन्द्र वो ही, है इन्द्र वो ही ।२।।

(८)

युद्धों में लड़ती कर क्रन्दनों को
दैवी चमू ने या मानुषी ने
'रक्षा हमारी, आ कीजियेगा,'
कह कह पुकारा है इन्द्र वो ही ।।

बलवान निर्बल जो भी हैं शत्रू
पर या अपर हाँ जो भी अमित्र
लड़ते पुकारें जिसको सभी हैं,
है इन्द्र वो ही, है इन्द्र वो ही ।।

रथ का रथी हो या सारथी हो
रक्षा के हेतु हैं बिल बिलाते,
इक सुर बुलाते जिसको समर में
नाना तरह से, है इन्द्र वो ही ।।

(९)

जिसके बिना तो जन जीतते नहिं
युद्धों में जिस को रक्षार्थ अपने
करते पुकारें है इन्द्र वो ही ।

इस विश्व भर का प्रतिमान है वह,
च्युत अच्युतों का कर्ता वही है,
हाँ, इन्द्र जानो उसको सभी तुम
हाँ, इन्द्र वो ही, है, इन्द्र वो ही ।।

(१०)

सब एन-धारी जन को कि जिसने
महिमा न मानी थी जिस किसी ने,
निज हाथ में ले कर शस्त्र शर्वा
मारा सँहारा है इन्द्र वो ही ।

जो मानते नर उसको नहीं हैं,
चाहे करें वे कितना भि उत्साह
श्रद्ध्या-स्वरूपी उत्साह का फल
देता नहीं वह उन को कभी है ।
हाँ इन्द्र वो है, हाँ इन्द्र वो ही ।।

(१२)

जो सप्तरश्मी है वृष्टि करता,
जो सप्त सिन्धू की सृष्टि करता,
द्यूलोक चढ़ते रौहिण असुर को
जिस वज्र बाहू ने था सँहारा,
उसको ही जानो, मुझ को न मानो
है इन्द्र वो ही, हाँ इन्द्र वो ही ।।

(१३)

द्यावाभि झुककर पृथिवीभी झुककर

शीशें नवाते जिसके लिये हैं ।
डरते हैं पर्वत जिसके बलों से,
कुलिशाँग वाला जो सोम-पायी
जो वज्र कर में धारे हुवे है,
जानो जनो तुम पहिचान कर लो
जो वज्र बाहू है इन्द्र वो ही ।।

(१४)

रक्षा है करता उस की कि जो जो,
नर सोम औषध से सोम रस का,
उसके लिये ही अभिषव है करता ।
औ' जो पुरोडाशों को पकाता,
औ' शस्त्र मन्त्रों को है उचरता,
औ' शान्ति मन्त्रों के गीत गाता ।
रक्षा है करता उसकी भि जो कि
यज्ञार्थ अन्नों को है पकाता,
या शस्त्र मन्त्रों के गीत गाकर
या स्तोस्त्र मन्त्रों के गान कर कर,
स्तुतियों को करता रक्षा सुहित है ।
जो ब्रह्म वद्र्धन जो सोमवद्र्धन,
सामृद्ध्य अन्नों का जो कि करता
जानो जनों तुम, है इन्द्र वो ही ।।

—o—

(ऋक् म० १० सू ९०)

पुरुष सूक्त

पुरुष का है रूप कैसा ?
शीर्ष जिसके हैं हज़ार ।
आँख जिसकी हैं हज़ारों,
पैर भी जिसके हज़ार ।
भूमि को जो सब तरफ़ से
घेर कर ठहरा हुआ ।
व्याप्त जो है जगत भर में,
और भी आगे अरे ।
जाँच लेना देख लेना,
क्या न दस अंगुल परे ।।

(२)

पुरुष ही वह समझ सारा
जो भि कुछ इस जगत में,
है न उससे कोई न्यारा
जो हुआ होगा कभी ।
अन्न से जो वृद्धि पाते,
प्राणियों का भी वही,
मरणधर्मा या अमर जो,
स्वामि सबका है वही ।
प्रगट सब में हो रहा है ।
शक ज़रा इस में नहीं ।।

(३)

यूँ कहा है पुरुष जितना
ओ, न उतना ही समझना,
पुरुष महिमा तो कहीं रे

बहुत उस से है अधिक ।
जीवनी औ' मरण वाले
(पंक भव में जो धँसे ।)
जगत के वे भूत इसके
एक चौथे में वसे ।
शेष है जो तीन-चौथा
(नित्य रहता शान्ति से ।)
मरण बन्धन में न पड़ कर
चमकता निज कान्ति से ।

त्रिपादुर्ध्व उदैत् पुरुषः
पादोस्येहाभवत् पुनः ।
ततोविष्वङ व्यक्रामत्
साशनानशने अभि ।४।

ज़ो त्रिपादों में गिनाया
'भाग' उसका है गया ।
दोष गुण से शून्य है वह
औ' अवस्थित ऊर्ध्व में ।
प्रलय सर्जन के न चक्रों
में पड़ा है वह कभी ।
शेष का जो पाद उसका
तीन पादों से पृथक्
सृष्टि चक्रों में हमेशा
घूमता रहता है वह ।
और चारों तरफ़ उस के
(स्थावरी या जंगमी में ।)
साशनी या अनशनी में,
व्याप्त रहता वह स्वयम् ।।

तस्माद्विराडजायत
विराजो अधिपूरुषः
सजातो अत्यरिच्यत
पश्चाद्भूमिमथो पुरः ।५।

आदि के उस पुरुष से था,
जन्म पाया रूप ने इक,
विश्व रूप विराट जिस को
कह रहे सब वेद हैं ।
(स्वर्ण-सा था चमकता वह
दीप्तियों से पूर्ण था ।
पुरुष के इस रूप को ही
वेद कहते स्वर्ण-गर्भ,
गर्भ में उस के उपस्थित,
सकल विश्व भविष्य था ।

गर्भ में हेमाण्ड के उस,
पुरुष ही जीवात्म बन,
चेतना को ला गया लो
चर जगत पैदा हुवा,
जन्मते ही 'चर' हुआ अति-
रिक्त सब से एक दम ।)
इस तरह तब पुरुष था पति

एक इकला भूत का ।
लोक तीनों की हुई थी
सृष्टि तब हेमाण्ड से
लोक तीनों में भि भूमि
बाद में पैदा हुई ।
भूमि सर्जित हो चुकी जब
प्रगट हो गईं तब पुरें ।
चूँकि सातों धातुओं से
पूर्ण होती देह है ।
इस लिये थी ये कहातीं
पुर, न कुछ सन्देह है ।

(६)

देव गण ने यज्ञ ऐसा
ये रचा जिसमें हुई
(मान लो या निज न मानो,)
पुरुष की हवि थी हुई । ।।
पुरुष के बलिदान वाला
यज्ञ देवों ने किया ।
ग्रीष्म इन्धन थी बनी औ'
आज्य-रूप वसन्त थी ।
शरद् की हवियाँ हुवाईं
याग देवों ने किया ।

(७)

पुरुष का था यज्ञ जिस से
जन्म पाया पुरुष ने
अग्रतः वह जन्म पाकर
पुरुष ही बलि हो गया ।
देवगण ने यज्ञ का पशु
मान कर इस पुरुष को
शुद्ध जल से छींट कर के
यज्ञ में हुत कर दिया ।
पुरुष की इस आहुती से,
साधु ऋषि पैदा हुए ।
साधु ऋषि भी देव गण ने
यज्ञ के अर्पित किये ।।

तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः
संभृतं पृषदाज्यम्
पशून्ताश्चक्रे वायव्यान्
आरण्यान्ग्राम्यांश्च ये ।८।

सर्व हुत इस यज्ञ से फिर
आज्य निकला दधि मिला,
और नाना पशु भि निकले
ग्राम्य या जो वन्य थे ।
वायुवासी वायवी भी
यज्ञ से पैदा हुये ।।

(९)

सर्वहुत इस यज्ञ से लो
छन्द निकले वैदिकी,

साम के, ऋक् के, यजुष् के
वेद पैदा हो गये ।
अश्व निकले और गौवें
बकरियाँ औ' भेड़ भी
और वे सब पशु भि निकले
उभय जबडों में कि जिनके,
दाँत होते जगत में ।।
पुरुष जो पैदा हुआ उस
के बताओ किस तरह
अंग अंगों से हुईं सब
कल्पनायें थी पृथक् ।
कौन उसका मुख बना औ'
कौन उसकी बाहुवें
कौन उसके थे उरू औ
कौन उसके पाद थे ?
ब्राह्मणों का जन्म इस के
शोभनी मुख से हुवा ।
बाहुवों से क्षत्रियों का,
वैश्य उसकी जाँघ से,
कल्पना हुई इस तरह से
शूद्र उसके पैर से ।
सूर्य पैदा चक्षुओं से
चन्द्रमा मन से हुआ ।
देव जो इन्द्राग्नि नामक
थे हुए मुख से तथा ।
वायु ने भी जन्म पाया
लो उसी के प्राण से ।
शीर्ष से तब द्यौ हुवा औ'
नाभि से था अन्तरिक्ष ।
पाद से थी भूमि देवी,
श्रोत्र से थीं सब दिशा ।
इस तरह से पुरुष से हुई
लोक कुल की कल्पना ।।
सात जिसकी परिधियाँ थी
यज्ञ ऐसा था रचा ।
समिध देवों ने जलाईं,
बीस ऊपर एक फिर ।
पुरुष पशु को बाँध कर के
यज्ञ देवों ने यजा ।।
यज्ञ रूप पतिप्रजा को
देव गण यजते हैं सब ।
यज्ञ में जो पूर्व से ही
धर्म होते हैं स्वयम्,
देव गण महिमा से उनकी
प्राप्त होते स्वर्ग को ।
स्वर्ग वह जिनमें गये थे
पूर्व युग में देव-गण ।।

--०--

शत हस्तः समाहर

(ऋक् ३।२४।५)

हाथ सौ-सौ से जमा कर
तो सहस से दान कर।
कर्म-कृत औ' कार्य जो हैं
सतत लोक वितान कर ॥

—०—

वास्तोष्पति

(ऋक् मण्डल ७, सू० ५४)

देव, गृह के हो हमारे,
सो हमें पहिचानिये।
वास्तोष्पति कहते तुम्हें हम
सुध हमारी लीजिये।
शोभने घर कर हमारे
रोग विरहित भी करो।
चाहनायें जो हमारी,
हम सबों को दीजिये।
चारपायों औ दुपायों
पर शमें करते हुवे
गेह जन औ' धन बढ़ा कर
मान हम को दीजिये।
अश्व गो सम्पद् बढ़ा कर
के करो हम पर कृपा,
रात्रियों में चमक शशि सम
आप रक्षा कीजिये।
सख्य अपना दो प्रभो वर,
दो अजरता की दया,
पुत्र सम हम हैं तुम्हारे,
प्रेम पितु सा कीजिये।
प्राप्त धन करते हुवे हम
शक्त हों धन प्राप्ति में,
स्थान सुन्दर खान के, औ
धाम सुख के दीजिये।
स्वस्तियों से हम सबों की
हे प्रभो नित आप ही
सर्वदा रक्षा हमारी
कीजिये, जी कीजिये ॥

—०—

वसन्त इन्तु रन्त्यः

(साम, पूर्वाचिक ६, ३, १३, २)

देख प्रभु की रुत बनाईं
परम शम रमणीय हैं।
सब सुहानी हैं मनोरम
हृदय हर कमनीय हैं।
राज ऋतु औ' ग्रीष्म दोनों
पावसें शरदें तथा,
हिमभरी औ' शिशिर रमणी
परम सुन्दर, क्या कथा ?

स एति सविता

(साम पूर्वाचिक ६, ३, ११, २)

चमकता आता है सविता
स्वर्दिवों की पीठ पर।
रश्मियों से भर गया नभ
'ईश' देखो दीठ भर।।

--०--

यतोयतः समी हसे

(यजु ३६, २२)

जिस जिस तरफ़ से भी प्रभो!
भय हों हमें, हम हों अभय।
शान्ति सुख पावें प्रजागन
सकल पशु भी हों अभय।।

--०--

उद्यानं ते पुरुष नाव यानं

(अथर्व ८-१-६)

नर सदा उत्थान कर तू
यान नीचे कर नहीं।
जीवनों में बल भरूँगा।
शून्य बल होगा नहीं।
सुखरथों पर चढ़ मजे से
जो न मरते हैं कभी,
ज्ञान देता तू चला जा
इस जरा में भी अभी।

यद्द्याव इन्द्र ते शतं

(ऋक् ८,७०,५।
अथर्व २०,८१,१, साम पू० ३,२,६६
अथर्व ६२-२०, साम उ० २,२,१२)

सौ-सौ दिव के लोक समाते
फिर भी पूरे भर ना पाते।
पृथु इतनी जो पृथिवी भाई,
सौ-सौ उसकी भी न समाई।
सूर्य सहस की आभा भारी
चमकीं पर ना चमका पाईं
रोदसियाँ भी कितनी मिलमिल
उसको नाँ रे झलका पाईं।

(२)

वज्री है वह दृढ़ बलधारी।
व्याप्त वही इस दुनियाँ सारी।
जड़ चेतन का रे वही विधीश
सच है सच है वही है ईश।।

--०--

प्रियं मा कृणु

(अथर्व, १६, ६२, १)

ईश मुझ को प्रिय बनाओ
आर्य जन का प्रिय बनूँ।
देव जन का प्रिय बनूँ मैं,
राज जन का प्रिय बनूँ।

वैश्य जन का प्रिय बनूँ मैं।
शूद्र जन का प्रिय बनूँ ।

--०--

उत्तिष्ट ब्रह्मणस्पते

(अथर्व १९, ६, ३१)

उदित होवो हृदय मेरे
ब्रह्म के ओ जगपति ।
यज्ञ द्वारा देवभावों
को जगादो जगपति ।
यज्ञ का यजमान हूँ मैं,
यज्ञ के तुम हो पति ।
आयु मेरी को बढ़ाना
वायु प्राणों को बढ़ा ।
कीर्ति मेरी को बढ़ाना,
पुत्र पौत्रादिक बढ़ा ।
धान्य धन की वृद्धि करना,
पौष्य पशुओं को बढ़ा ।
सर्वतः समृद्धि देना,
सब तरह मुझ को चढ़ा ।

--०--

सपर्यगाच्छुक्रमकाय

(१)

निकाल बाहर उसे करें क्यों
कि जिसको दिल में बिठा चुके हैं?
सभी जगह में गया हुवा वह ।
न लोक ऐसा, जहाँ न है वह ।

(२)

न पाप भागी कभी हुआ वह
न लिप्त रागी कभी हुआ वह,
निकाल बाहर उसे करें क्यों
कि जिसको मन में मना चुके हैं?

(३)

न काय उसकी, न स्नायु उसके ।
न आयु उसकी कहीं लिखी है ।
वह शुद्ध पावन, पवित्र आत्मा ।
कविर्मनीषी बता चुके हैं ॥

(४)

किसी ने पैदा किया न उसको
उसी ने पैदा किया सभी को ।
भला कहें क्यों कि ईश है नहिं ।
कि जिसको सर्वेश कह चुके हैं ॥

(५)

अनादि सर्गों से वेद वाणी,
बनाई उसने है हूबहू यह ।
भला कहें क्यों ? न ईश-कृत है,
जिसे कि ईश्वर से पा चुके हैं ।

(६)

वही हमेशा उसे बनाता,

न भेद थोड़ा भि उसमें आता।
उसी पै चलते हुए जगत में,
सुधर्म वैदिक चला चुके हैं ।।

(७)

कहीं न जड़ में सुनी है मेधा,
अमेध कैसे करेगा कविता ?
मगर उसे तो कविर्मनीषी ।
ये वेद गाकर सुना चुके हैं ।।

(८)

बताओ अव्रण कहोगे कैसे
कि जिस की मूरत बना रहे हो।
हिला सके नाँ न हिल सके जो,
भला कहोगे कि शुक्र है वह ?

टेक

निकाल बाहर उसे करें क्यों?
कि जिसको दिल में बिठा चुके हैं।।
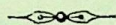
वैराग्य तरंग

(१)

दश दिशाओं और तीनों
काल में जो व्याप्त है।
स्वानुभव से ज्ञान जिसका
प्राप्त होता है हमें।
चेतना मय जो अनादि
और जिसका है न अन्त;
तेज की जो मूर्ति है औ'
स्फूर्तिदायक शान्तिमय,
उस तरह के ब्रह्म के प्रति
हाथ दोनों जोड़ करके,
वन्दना करता हूँ मैं।

(२)

विद्वान ईर्षा से भरे
धनवान गर्वीले, हरे!
शेष सारे अज्ञ भारे,
कौन ज़ो भाषित पियारे,
इन अयोग्यों को सुनाकर
दुख महा खुद आप पायें ।।

(३)

संसार के जो चरित हैं,
दुख से सभी वो भरित हैं।
पुण्य कर्मों से हैं मिलते
सुख हमें जो जीवनों में,

हाय ! वे सब बहुत बनते ।
दुखद हैं विषयी जनों में ।।

(४)

हाय ! तृष्णे छोड़ दो अब,
छोड़ दो, अब तो मुझे ।
खोद डालीं क्षिति तलें भी
खान से निकलीं जु कच्ची
धात उनको भी धमाया ।
सागरों को तैर डाला,
डुबकियों से तल भि छाने
रत्न कोई प्राप्त करलूँ !
अश्मशानों में भि जाकर
रात पर रातें बिताईं,
मन्त्र की अराधना में,
सिद्ध करके मन्त्र जिनसे
प्राप्त कर लूँ वित्त को ।
यत्न लाखों कर मैं हारा
पर मिला नाँ एक काणा
'कौड' तक भी हा ! मुझे ।
घृणित तृष्णे ! छोड़ दो, ओ
छोड़ दो, अब तो मुझे ।

(५)

दुष्ट जन की नौकरी में
गालियाँ ताने सहे ।
रोक रोना मन में अपना,
दुख छिपाते भी रहे ।
आस करके कुछ मिलेगा,
नाच नचते भी रहे ।
व्यर्थ थे नचने व सहने
जो कि हमने थे सहे ।

(६)

(चामरी चाल)

विषम दुर्ग देश में
मैं घूमता फिरा,
छोड़ कुल व जाति-मान
दूसरों को सेवता फिरा ।
काक की तरह से
दूसरों के घर में घुस के,
सहम कर के डर से
छिप के भोजनों को
जीमता फिरा ।
पाप कर्म भी किये
कि मैं कमाऊँ खूब धन
पर न कामना मिटी कि
'और और जोड़ लूँ'–
कि धन को मैं बटोर लूँ ।
नाँ हुआ कि हिरस को मैं
मोड़ लूँ, कि होड़ को मैं

छोड़ दूँ कि तिसन
को सिकोड़ लूँ।
ओ रि! दुर्मते कि
तोष को मैं प्राप्त कर
पियास धन की तृप्त कर
के हिरस अपनी तोड़ लूँ!।

(७)

(मनोरमा)

प्रात जानी, शाम आना
उमर का यूँ गुजर जाना।
काम में मशगूल रहकर
समय का नाँ ख्याल करना।
जन्म लेना और मरना,
देखकर भि फिर न डरना।
मोह मदिरा पान करना
ईश का ना ध्यान करना।
विश्व में रहते हुवे नर
ने यही तो हाय! करना।

(८)

भोग कि नाँ शक्ति तन में
मान दुनियाँ में रहा नाँ।
स्वर्ग भी सब वे सिधारे,
हम-उमर जो थे हमारे।
जिस्म है वार्द्धक्य डेरा।
आँख आगे है अँधेरा।
यष्टि उठनी भी कठिन जब,
वचन सुन कर मरण आया।
जर्जरित जिसकी है काया।
चकित हो घबरा गया!!

(९)

रुण्ड मुण्डा कँप कँपाता
कौन देखो नर वहाँ है?
तरुण वय की सुखद तन की
तरुणता इसकी कहाँ है?
शीर्ण इसकी दन्त-आली
गिर गई हैं, मुख भि खाली!
शक्ति इसकी हस्त पद की
लाठियों के शरण जा ली।
नकल कर कर चाल की रे
तनय देते व्यंग ताली।
ज्योतियाँ तो हैं नहीं फिर
नज़र इसने किधर डाली।
कान तो नाँ काम करते
क्यों सुनेंगे व्यंग गाली?
कान का अब काम इतना
दो टँगे सोने की बाली।
देह ढकने को मिलेगी
एक दो गज़ कफनि काली।

हे हरे ! निर्लज्ज मन ये
चाहता है विषय भोगे !
प्रार्थना कवि की, प्रभो तुम
से कि तुम कुछ अकल दोगे ।

(१०)

भूख से पीड़ित हुए शिशु
हाय ! रोटी दो नि, अम्माँ !
दीन बन, कहते हुवे, यदि
खींचते माँ का ना आँचल;
तो भला फिर कौर मानव
जो मनस्वी मान वाला,
भीत सा इन्कार डर से
और सह अपमान सब से
माँगता फिरता, अरे !

(११)

विधि ने बनाई साँप की है
जीविका ऐसी कि देखो
वायु भक्षण को हि कर-कर
मौज से जीता है जग में
बिन किये कोई यतन ।
और देखो थलचरी इन
पशुगणों को जोकि नित-नित
खाय कर के घास तिन के
मौज से चरते हुए
इस धरा पर शयन करते
मोद में रहते हैं मस्त !
ओ विधाता, ये बताओ,
क्यों किया है, पक्षपात ?
यदपि दी है मनुज जन को
शकल सुन्दर अकल अद्भुत
पार कर लें भूमि के इन
छोर तक फैले हुए सब
सागरों को सुगमता से;
दुःख है ! पर वृत्ति कैसी
दी कि जिसकी प्राप्ति में ये
उमर सारी को लगादें
और करते कोशिशों को
गुण गँवादें हा ! सभी !!

(१२)

भोग क्या भोगेंगे नर जब
भुक्त ही हैं होगये इन भोग से ।
तप भला ये क्या तपेंगे ?
जब कि उल्टे तप्त ये सब
हो गये हैं आप ही इन ताप से ।
काल यापन क्या करेंगे
काल के जो कवल होगै
हिरस करते "यह मिले औ'
यह मिला तो वह मिले, फिर

वह मिला तो वह मिले !
शान्त होती ही नहीं है,
भूख जिनकी हिरस की ।
हिरस करते जो गये हैं
काल के रे! गाल में ।

(१३)

शत्रु हो या मित्र होवे,
साँप हो या हार हो ।
अलग नजरों से न देखूँ ।
एक सा व्यवहार हो ।
खेल वाली होय गुड़िया
या कि हो सुन्दर तिया ।
दृष्टि उन पर एक सी हो
एक सी दोनों प्रिया ।
कुसुम शय्या हो सुकोमल
या कठिन पत्थर शिला ।
दुःख सुख सब एक मानूँ
यदपि कुछ भी हो मिला ।
कान्त मणियाँ हों चमकतीं
या कि मिट्टी का डला ।
एक पाकर मैं न ललचूँ,
दूसरा नाँ हो खला ।
डाल डेरा पुण्य बन में
वेद आदिक पठन में ।
शेष जीवन को बिता दूँ ।
ईश तेरे भजन में ।
हे प्रभो! हो ध्यान तेरा
राम, तेरे रमण में ।
शान्त मन को मैं लगा दूँ
इन्द्रियों के दमन में ।

(१४)

खञ्जा गञ्जा और लुण्डा व रुण्डा,
पतला दुबला और काणा व बहिरा,
भूखा-भाणा हड्डियों का है पिंजरा,
सूखी काया, जख्म हैं पूय पूरित,
फोड़े फुन्सी से भरा देह सारा,
पीली पाकों से सड़ा जिस्म जिसपर
मुच्छीमक्खें मुर्दवाली भिनकतीं ।
भूँ भूँ करतीं नील बोतल न थकतीं।
सुर सुर करतीं मैगटें रींगती हैं ।
गल पर जिसके ठीकरा-सा बँधा है।
बूढ़ा थर थर काँपता मृत्यु मुख में,
बदबू वाली मासिकी कुत्तिया से,
लिब्-लिब्, लिबड़ी चू रही चाटताहै
लप् लप् करके; और फिर सूंघताहै।
गिर गिर पड़ता रेंगता जा रहा है ।
दन्दी-पञ्जे भौंक भी शत्रुओं के
खाता जाता, श्वान पीछे लगा है

कुत्ती के हा ! पर नहीं छोड़ता है।
भीषण रोगों आतशक औ सुजाकों-
से भी देखो हो गया मुबतिला है।
शिश्नी सूजी, हार्डशैंकर बना है,
पीला पीला लेस सा भी सना है,
देखो देखो, इन्द्र! क्या हो रहा है?
नर भी, जग में, दास ऐसे मदन के
कुत्तों-से जो कुत्तियों पर लगे हैं।
तो भी तृष्णा शान्त होती न उनकी
देखो देखो, इन्द्र ! क्या हो रहा है ?
सुन्दर उनकी हैं विवाहित अतायें,
उनसे भी वे तृप्त होते नहीं हैं।
पीछे तिनके जा रहे जो कुचाली
रुग्णा भुग्ना और कुब्जा कुरूपा
हा! हा! कामी-वासने बाज़ आजा!

(१५)

भीख माँग खा रहे,
भूमि पर हैं सो रहे।
जग में जिन के और जन
हैं नहीं, हैं एक-तन।
वस्त्र मलिन जीर्ण हैं,
चीथड़ों में शीर्ण हैं।
देख, देख इन्द्र, ओह !
वासना ने क्या किया ?
छोड़ उन को भी न रे !
दास निज बना लिया।
विषय कीच में बहे,
काम नीच में रहे।
भीख माँग माँग कर
भूमि पर जो सो रहे ॥

(१६)

इन्द्र ! इन्द्र ! देख ओह ।
जगत के य' जन अरे
अकल खो के हो गये
पागलों से हा ! हरे !
लोथ माँस की स्तनें,
हेम कलश कह रहे !
मुख खँगार से भरे
चाँद से तुला रहे !
मूत्र खून वीर्य से
लिप्त जघन जो रहे
करिवरों की शुण्ड या
कदलियों के सम कहे !
हाय निन्द्य रूप भी
योषिता कुरूप के
कविवरों के विषय-चक्षु
देखते सुरूप-से !

--o--

बची हुई सूक्तियाँ

(१)

अति न करो

रूप अति कारण बना था
जानकी के हरण का ।
गर्व अति कारण बना था
रावणेश्वर मरण का ।
बलि बिचारा भी बँधा था
दान अति देकर अहो !
अति कभी कोई करे ना
यह सभी से जा कहो ।

(२)

वीर अर्जुन की प्रतिज्ञें
प्रेयसी दो हैं यहीं ।
युद्ध से नहि भागना, औ
दीनता करनी नहीं ।

(३)

बहुत परिचय मान हरता
कर अनादर दुर्गति ।
मलय गिरि की भील युवती
रोज चन्दन बालती ।

(४)

इष्ट भी करता न शुभ है
यदि मिले व' अनिष्ट से ।
अम्रितें भी मृत्यु देतीं
प्राप्त हों विष-मिष्ट से ।

(५)

अबल तिनके सबल बनते
ग्रथित हो जाते जभी,
मस्त हाथी बाँध लेते,
शक्ति संहति में सभी ।

(६)

शरण घर की आय हो यदि
शत्रु तक भी हे सुजन!
आदरें कर अर्ध्य दे दो,
हो न कर उस से विमन ।
देख द्रुम नहि खींच लेते
दुष्ट से निज साय को,
काटने को नर कुल्हाड़ा
हाथ ले कर आय तो ।
(नीति यद्यपि भारती यह
कवि नहीं पर मानता,
शत्रु से जो शत्रु वाली
नीति है वह ठानता ।)

(७)

यह है तेरा वह है मेरा
तंग दिल की 'तेर-मेर' ।

दिल हुए हैं उदार जिनके
सकल जग उनका चु-फेर ।

(८)

द्वार दूजे का न देखें
विरह की न व्यथा सहें ।
धन्य वे सब जन हैं जो कि
दीन बन न कथा कहें ।।

(९)

देख उनको जो कि ऊँचे
क्यों न जन लघिमाँयगे ।
देख लें 'गर जो कि नीचा,
वे हि तब गरिमाँयगे ।।

(१०)

धीर, जिन ने लीं प्रतिज्ञा
तो न मञ्जिल लम्बी ये ।
गगन चुम्बी पर्वतें भी
ज्यों कि दीमक बाँबियें ।१।
उदधि बनते कुहल-से हैं,
खेल समझें लाँघना,
ये दिगन्तों तक सुविस्तृत,
भूमि घर का आँगना ।२।

(११)

अस्त्र शस्त्रों का सुचालन
या कुचालन है, तथा ।
योग्य या कि अयोग्य हाथों
में पड़ा होवे यथा ।
सत्य वाणी के वचन औ,'
शुद्ध शास्त्रों के पठन,
भी हमेशा, योग्य जन के
ज्यों प्रमाणिक के कथन ।

(१२)

'विद्य' बन अभ्यास से तू
शील से कुलवान बन ।
सत्य-धार्मिक धारणा से
आर्य जन सन्तान बन ।।

(१३)

जीत लो, तुम नम्र बन कर
जो कि तुम से हो बली ।
निर्बली बल-दर्शना से
जीत लो, ऐ जेतली ।१।
उभय का बल तुल्य हो तो
शौर्य से या वीरता से
जीत लो जैसे भि होवे
नम्रता गम्भीरता से ।

(१४)

कार्य में उत्साह होवे,
आलसें हों सब तजी,
कार्य-विधि से विज्ञ होवे

लगन मन में हो, अजी ।१।

मित्र अपने इष्ट जन हों
आर्द्रता में दृढ़ सभी;
हो नहीं सकता न लक्ष्मी
वास हित आये तभी, ।२।

शूरता व कृतज्ञता भी
वास करती हों जहाँ,
हो नहीं सकता न लक्ष्मी
खुद ब खुद आवे तहाँ ।३।

(१५)

आपदों में हेतु बनता
जो हितू, ही, हाय है !
स्तम्भ बनती बाँधने हित
वत्स अपना गाय है ।

(१६)

अश्व औ' नारी सुशासित
या कुशासित होत हैं,
योग्य या कि अयोग्य हाथों
में पड़ें वे जिस तरह ।१।

वीण-वादन भी सुवादन
या कुवादन होत हैं,
योग्य या कि अयोग्य जन द्वारा
बजें वह जिस तरह ।२।

(१७)

ज्ञान मंजन की सलाई
आँख में इक डाल दी ।
धन्य गुरु जिसने कि मुझको
तिमिर में भि उजाल दी ।

(१८)

रोष की जो मूर्ति हैं या
तोष जिनको हैं नहीं ।
दूसरों पर जी रहे जो,
उद्यमी खुद हैं नहीं ।
हसद करते जो हमेशा
और नफरत से भरे ।
सुख न मिल सकता उन्हें, सखि!
दुःख भारी सिर धरें ।

(१९)

उदय होते वक्त रवि का
लाल होता रंग है ।
अस्त होते वक्त भी तो
देख वो ही रंग है ।
जो महात्मा पुरुष हैं वे
एक रस रहते सदा ।
सम्पदें हों प्राप्त चाहे,
या कि आवें आपदा ।

—०—

(२०)

उत्तमों को ख्याति मिलती
निज गुणों के करण से ।
मध्यमें हैं ख्याति लेते,
पितृ-गुण के स्मरण से ।
अधम होते ख्यात कुछ हैं,
पूर्व कृत कुल-चरण से ।
नीचतम कुख्यात होते,
श्वसुर जन के भरण से ।।

(२१)

एक सुन्दर हंस ने दी
जो कि शोभा सरस् को ।
बक हजारों भी न देते,
हैं कभी भी दरस को ।।

(२२)

एक बच्चा शेरनी जन
बेखबर सोती है लो,
दशक गदही यदि जने तो
भार ही ढोते हैं वो ।।

(२३)

कीट भी लो सज्जनों के
सिर चढ़ा सुमनों के साथ ।
उपल भी लो देव बनता
पूजते यदि जोड़ हाथ ।

(२४)

जो न दूजे के सहारे
जीवनी बस है वही ।
यदि पराश्रयिता भि जीना
मृतकता तब क्या रही ?

(२५)

हार हैं भूषा न करते
हृदय-हर भी चमकने ।
केश भी नहिं जो प्रसाधित
स्नान भी नहिं लेपनें ।
भाल बेंदी नहिं सजाती
नाँ अधर के रंगने ।
कुसुम भी नहिं हैं सजाते
यदपि सुन्दर अनगिने ।
एक बस वाणी पुरुष को
है सजाती, प्रेयसी ।
जो कि मार्जित और संस्कृत
शब्द पाती प्रेयसी ।
भूषणें हा ! क्षीण होतीं
वे न सुखकर प्रेयसी ।
चमक उनकी हीन होती
है निरन्तर प्रेयसी ।।

(२६)

सोचते न परोक्ष को हैं,

नाँहिं भावी मोक्ष को ।
सोचते यदि समय को हैं,
तो गुजरते हाल को ।
समझ से यूँ काम लेते
समझ उनकी है यही ॥

(२७)

प्रेमासक्त नायिका

मूंदने का कर बहाना
आँख मेरी
पीठ से सटका लगाती
है उरोज ।
बाँह से अंगडाइयों का
कर बहाना,
है दिखाती अंग नंगे
औ-मनोज ।
अधर पर रख अँगुली को
मुस्कराती,
कनखि, लख कर है खिलाती
मुख-सरोज
'क्यों छुवा तुम छातियों को?
दोष झूठा–
दे मुझे यूँ तानती है
भौंह रोज़
यौवनी इन मस्तियों में
जो करे उसकी है मौज
चित चुरावे नाँ चुरावे
या कि दे वस दिल की सोज़ ।

(२८)

विरह-अञ्जलियाँ नयन ये
पान कर कर प्रेमघन ।
मस्त रहतीं रात दिन हैं,
ज्यों छकीं हर पल व छिन ।

(२९)

घूँघटी पट खोल री
शरम कर मत, बोल री ।
कुछ इधर को घूम री,
प्रिय अधर को चूम री ।
अंग अपने भेंट ले,
दुई युगों को मेट ले ।

(३०)

आह इतनी शरम थीं कि
वाष्प धरणी-जल बने ।
दूर जा आकाश में वे
सघन घन में हो घने ।
रुदन कर कर बरस आँसू
विरह के दुख झर झरे ।
आ बहे बन भरत-भू पर
सिन्धु यमुना गंग रे ।

(३१)

नयन में यदि झलक लूँगा ।
जागते या शयन में ।
पलक दोनों झपक लूँगा ।
कैद होगा नयन में ।
आँख खोलूँगा नहीं तब,
प्रिय न गायब हो कहीं ।
खुद न देखूँगा कभी तब
देखने दूँगा नहीं ।
डर मुझे है भाग कर वह
गुम न हो जाये, कभी ।
लो उसे यूँ बन्द कर के
बे-फिकर हूँगा तभी ।

(३२)

स्वप्न में प्रिय आयगा जब
क्या मुझे न जगायगा ?
लो जगाते ही मुझे तब
बन्द खुद हो जायगा !
देखता रह जायगा !!

(३३)

शलभ गिरता दीपशिख पर
बेसमझ !
जानता नहिं जल के मैं
मर जाऊंगा ।
मत्स्य जाता माँस खाने
वडिश पर,
जानता नहिं, आप पकड़ा
जाऊँगा ।
पर अचम्भा है बड़ा नर बुद्धिमान्
जानता भी 'तरुणियों के हाथ दिल
को गवाऊँगा लगा गर भोगने
वासना के भोग इन के
साथ मिल'
छोड़ता नहिं फिर भि देखो
खेद है !
हाय ! गहरा मोह कितना
काम का ।
पा सका नाँ कोई भी
क्या भेद है !
'इन्द्र जेतल' नाम लो तुम
राम का ।

(३४)

अण्ड जब तक फूटता नहिं
साँप वह बनता नहीं ।
फूटते ही साँप वनकर
विष उगलता है विषम ।
सर्पिणी के अण्ड के सम
जन जगत में हैं न कम ।।

--०--

बेवफा प्रेमी पर क्या मीठी चुटकी कसी है--

हे भ्रमर तुम तो किसी से प्रेम करते हो नहीं ।
फूल का रस चूस उसको छोड़ जाते हो वहीं ।।

'सत्यमेव जयते' का प्रस्तुतीकरण कवि नें अपने शब्दों में इस प्रकार किया है--

जान जाये विश्व सारा, जीत होगी सत्य की ।
गीत गीता गा रही है, बात सुन्दर तथ्य की ।।

पुस्तक में सर्वाधिक प्रयोग २६ मात्रा के गीतिका छन्द का हुआ है। कहीं २ अन्य वृत्तों की भी छटा दृष्टिगोचर होती है। उदाहरणार्थ लावणी साहित्य के 'बहरे शिकस्ता' की एक झलक देखिये--

निकाल बाहर उसे करें क्यों,
कि जिसको दिल में बिठा चुके हैं ।

भाव भारतीय संस्कृति के अनुरूप, एवं भाषा कहीं कहीं कुछ अपरिपक्व है । कवि निरन्तर साधना की सीढ़ी पर चढ़ रहा है ।

आशा है कि भविष्य में इस प्रौढ़ कवि के अनुभव की खरी खान से निकल कर अनेक सूक्ति-मुक्ता भारती के भव्य भण्डार को भरते रहेंगे । इस 'मनोहर धारा' को प्रवाहित करने वाले कवि जेतली धन्यवाद के पात्र हैं । अपार काव्य-कानन में जहाँ कोटिशः कुसुम स्तवक कुसुमित हैं वहाँ पर यह कृति भी कोमल कलिका सी शोभायमान है; इसकी पंखुड़ियों के होने वाले विकास को कृपया धीरे धीरे देखिये ।

गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर (हरिद्वार), २५-८-७४

सत्यव्रत शास्त्री 'अजेय'
प्रधानाचार्य

मनोहर धारा पर हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध लेखक एवं कवि श्री अजेय जी की लेखनी से लिखे गये दो शब्द

मैंने 'मनोहर धारा' को आद्योपान्त विहंगम दृष्टि से पढ़ा। काव्य के क्षेत्र में कवि इन्द्रसेन जेतली का यह सराहनीय प्रयास है। इस धारा में ईश तरंग, शृंगार तरंग, श्याम तरंग, नीति तरंग, विचार तरंग, वैदिक तरंग, वैराग्य तरंग एवं विविध तरंग हैं। अन्त में कुछ सूक्तियाँ भी दी गई हैं। जैसा कि तरंगों से ही प्रतिभासित होता है। कवि के मानस में अनेक ऊर्म्मियाँ उल्लसित हुई हैं जिन्हें शब्द-साँचे में ढाल कर कवि ने विकास का अवसर दिया है परन्तु छन्द-बन्धन से किसी को भी अमर्यादित नहीं होने दिया। कहीं, कहीं प्राचीन कवियों के भावों को ग्रहण कर नवीन शैली में प्रस्तुत किया है। बिहारी से कवि बहुत प्रभावित है, यथा—

पकड़ ले पतवार माला, नाम हरि की नाव पर।
उदधि भव का बहुत दुस्तर बैठ कर के पार कर॥

कबीर के रँग में रँगा कवि एक स्थान पर कहता है—

सुख सना संसार सारा ऐश कर कर सो रहा।
इन्द्र दुख में है बिचारा, जागता औ रो रहा॥

अच्छा धर्म कौन सा है, इस विषय पर कवि अपना मन्तव्य इस प्रकार प्रकट करता है—

कुफर कह कर तू सता मत, जान है इन्सान में।
जो भला करता सभी का, जोर उस ईमान में॥

शेष पृष्ठ भाग पर देखें